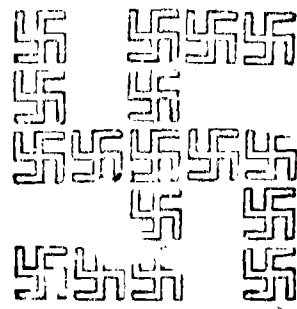


ॐ

भाग्य और पुरुषार्थ

वा

तकदीर और तद्वीर



लेखक—

सूरज कानूनील

वीर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम मख्या

काल नं०

म्वण्ड

भाग्य और पुरुषार्थ

(तक्रदीर और तदबीर)

भाग्य, दैव, किस्मत या तक्रदीर क्या है और पुरुषार्थ, उद्यम, तदबीर वा कोशिश क्या है ? भाग्य से ही सब कुछ होता है वा जीव की अपनी कोशिश भी कुछ काम कर सकती है ? और अगर दोनों ही शक्तियों के मेल से कार्य होता है तो इनमें कौन बलवान है और कौन निर्बल ? भाग्य की शक्ति कितनी है और पुरुषार्थ की कितनी ? भाग्य का काम क्या है और पुरुषार्थ का क्या ? इन सब बातों को जानना मनुष्य के लिये बहुत ही ज़रूरी है । अतः इस लेख में इन ही सब बातों को स्पष्ट करने की कोशिश की जायगी ।

एकमात्र भाग्य से ही वा एक मात्र पुरुषार्थ से ही कार्य की सिद्धि मानने को दुषित ठहराते हुये श्री नेमिचन्द्राचार्य गोमट्टसार कर्मकांड गाथा ८६४ में लिखते हैं कि, यथार्थ ज्ञानी भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के संयोग से कार्य की सिद्धि मानते हैं । एक पहिये से जिस प्रकार गाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार भाग्य वा पुरुषार्थ में से किसी एक से ही कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती । बन में आग लग जाने पर जैसे अंधा पुरुष दौड़ने भागने की शक्ति रखता हुआ भी बन से बाहर नहीं हो सकता

वैसे ही एक लंगड़ा पुरुष देखने की शक्ति रखता हुआ भी बाहर नहीं निकल सकता। हां, अगर अन्धा लंगड़े को अपने कन्धे पर चढ़ा ले, लंगड़ा रास्ता बताता रहे और अन्धा चलता रहे तो दोनों ही बन से बाहर हो जावेंगे। इसी प्रकार भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के सहारे संसारी जीवों के कार्य की सिद्धि होती है किसी एक से नहीं।

भाग्य और पुरुषार्थ क्या है, इसको श्री विद्यानन्द स्वामी ने अष्टसहस्री में (श्लोक नं० ८८ की टीका में) इस प्रकार स्पष्ट किया है—“पहले बांधे हुए कर्मों का ही नाम दैव (भाग्य या किस्मत) है, जिसको योग्यता भी कहते हैं, और वर्तमान में जीव जो तदवीर, कोशिश या चेष्टा करता है वह पुरुषार्थ है।” भावार्थ, जो पुरुषार्थ किया जा चुका है और जिसका फल जीव भोग रहा है वा भोगेगा वह तो भाग्य कहलाता है और जो उद्यम अब किया जा रहा है वह पुरुषार्थ कहलाता है। वास्तव में दोनों ही पुरुषार्थ हैं। एक पहला पुरुषार्थ है और दूसरा हाल का पुरुषार्थ।

जीव का असली स्वरूप सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और परमानन्द है, परतन्त्रता, इन्द्रियों की आधीनता राग, द्वेष, मोह—आदि उसका असली स्वभाव नहीं है। परन्तु अनादि काल से यह जीव कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ, अपनी ज्ञानादि शक्तियों को बहुत कुछ खोकर राग, द्वेष और मोह के जाल में फंसा हुआ, शरीर रूपी कैदखाने में बन्द पड़ा हुआ, तरह तरह के दुख भोग रहा है, किन्तु इस प्रकार कर्मों के जाल में फंसा रहकर भी जीव का निज स्वभाव सर्वथा नष्ट नहीं होगया है और न सर्वथा

नष्ट हो ही सकता है । * इस कारण कर्मों के जाल में पूरी तरह फंसे हुए जीवों की भी ज्ञान आदि शक्तियां कुछ न कुछ काम जरूर करती ही रहती हैं, जिनके कारण ही वे अजीव पदार्थों से अलग पहचाने जाते हैं और जीव कहलाते हैं इन ही बची हुई शक्तियों के द्वारा जीव पुरुषार्थ करके कर्मों के बंधनों को कम और कमजोर कर सकता है और होते होते सब ही बंधनों को तोड़कर अपना असली ज्ञानानन्द स्वरूप प्राप्त कर सकता है ।

सब ही जीव अनादि काल से मिथ्यात्व में फंसे हुए संसार में भ्रमण करते फिर रहे हैं । इन ही में से जो हिम्मत करते हैं वे अपनी विचार शक्ति से काम लेकर मिथ्यात्व को छोड़ सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं और फिर और भी ज्यादा हिम्मत कर राग द्वेष से मुंह मोड़, गृह त्याग, मुनि हो जाते हैं और महाव्रतों को पालन कर, तप आदि के द्वारा घातिया कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और फिर अघातिया कर्मों को भी नाशकर सदा के लिये मोक्ष में जा विराजते हैं । इस प्रकार जिन्होंने पुरुषार्थ कर कर्म शत्रुओं को जीत परम पद प्राप्त कर लिया है वे धन्य हैं और जिन्होंने पुरुषार्थ नहीं किया है वे घास फूस और लकड़ी पत्थर आदि निर्जीव पदार्थों की तरह कर्मों के बहाव में बहते हुए संसार में रुलते हुए तरह तरह की ठोकरें खाते फिर रहे हैं और बराबर रुलते फिरते रहेंगे जबतक कि हिम्मत करके कर्मों का मुकाबला नहीं करेंगे और उनको दबाने और क्षय करने की कोशिश नहीं करेंगे ।

* देखो गोमहसार गाथा २९ की संस्कृत टीका और टोडरमल जी का हिन्दी अनुवाद ।

कर्मों का असर दूर करने की तीन हालतें होती हैं एक क्षय अर्थात् कर्म का बिल्कुल ही नाश कर देना, दूसरे उपशम अर्थात् कुछ समय के वास्ते असर करने से रोक देना, तीसरे क्षयोपशम अर्थात् कर्म के उस बड़े हिस्से को जो जीव के स्वभाव को सर्वथा घात करता हो, बिना फल दिये ही नाश कर देना, हल्का असर करने वाले हिस्से का फल देते रहना और बाकी हिस्से का आगामी को फल देने के वास्ते सत्ता में रहना ‡ । यह ऐसा ही है जैसा कि शरीर में कोई दुखदाई मवाद इकट्ठा हो जाने पर या कोई दुखदाई वस्तु खा लेने पर, उसको वमन (कै) वा दस्तों के द्वार बिल्कुल ही निकाल बाहर कर शरीर को शुद्ध कर देना तो क्षय है। कै, दस्त वा पसीना आदि के द्वारा दुखदाई मवाद को न निकाल कर अर्थात् बीमारी के कारणों को दूर न कर उस बीमारी की तुरन्त की पीड़ा को कुछ समय के वास्ते किसी औषधि के द्वारा दबा देना उपशम है। और किसी औषधि के द्वारा अधिक दुख देने वाले मवाद का तो निकल जाना परन्तु कुछ हल्के से मवाद का बाकी रह जाना जिससे कुछ हल्का सा दुख होता रहे और कुछ मवाद का आगे को असर करने के वास्ते दबा रहना क्षयोपशम है। इस प्रकार कमती बढ़ती अनेक तरीके से कर्मों का मुक्ताबिला किया जा सकता है। जो पुरुषार्थी हैं वे इन सब ही रीतियों से कर्मों से लड़ाई करते हैं और इनको दबा दबा कर आत्मोन्नति करते चले जाते हैं।

कर्मों का एक एक हिस्सा नित्य ही फल देकर बेअसर होता रहता है परन्तु मुनि महाराज तप आदि महान

‡ देखो गोमट्टसार जीव कांड गाथा १३ की संस्कृत टीका और पं० टोडरमल जी कृत हिन्दी अनुवाद।

पुरुषार्थों के द्वारा फल देने से पहले ही कर्मों का नाश कर देते हैं * आत्मध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी ईंधन को भस्म करके धूरें वा गर्द की तरह उड़ा देते हैं। राग द्वेष रूपी चिकनाई से ही कर्म परमाणुओं का बंध आत्मा से होता है। मुनि महाराज अपने तप और ध्यान आदि पुरुषार्थ से राग द्वेष का नाश कर देते हैं जिससे कर्म बंधन की चिकनाई दूर होकर बंधे कर्म अलग होकर आप से आप ही उड़ जाते हैं।

कर्मों के उदय से सुख वा दुख जो भी हो उसमें सुख वा दुख मानने से, राग द्वेष करने से, आगामी को फिर कर्म बंध होता है, इस प्रकार कर्मों का उदय होना और बंधना बराबर होता ही रहता है। मुनि महाराज कर्मों के उदय होने पर उसमें कुछ भी सुख दुख नहीं मानते हैं, किसी भी प्रकार का कोई राग द्वेष नहीं करते हैं, सब ही अवस्था में समभाव रखते हैं, इस कारण उनको आगामी कर्मों का बंध नहीं होता। इस ही प्रकार भारी से भारी परीषहों के आने पर भी, कठिन से कठिन आपत्ति के आजाने पर भी वे किसी प्रकार का दुख नहीं मानते हैं, सर्व प्रकार से समभाव ही रखते हैं, इस ही से कर्मों के आने को रोकते हैं।

किसी बाह्य प्रबल कारण के मिलने पर कर्म समय से पहले भी उदय में आ जाते हैं जिसको उदीरणा कहते हैं। बुरे वा भले पहले बांधे हुये कर्मों का जोर वा रस और फल देते रहने का समय भी पीछे के बंधे हुये भले बुरे कर्मों के द्वारा घट बढ़ सकता

* देखो भगवतो आराधनासार गाथा १८५० की संस्कृत टीका अपराजित सूरिकृत, तथा लब्धिसार की टीका टोडरमल जी कृत में गाथा ३९२ के नीचे का प्रश्नोत्तर।

है, यहां तक कि सुख देने वाला सातावेदनीय कर्म बदलकर दुख देने वाला असाता रूप हो जाय, और दुख देने वाला असाता कर्म बदलकर सुख देने वाला साता रूप हो जाय अर्थात् पुन्य कर्म बदलकर पाप रूप हो जाय और पापकर्म बदलकर पुन्य रूप हो जाय। यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है जिससे सब ही कुछ हो सकता है। कर्मों के इस प्रकार अदलने बदलने को संक्रमण कहते हैं।†

पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का पैदा होना और बंधना भी बंद हो जाता है जिसको संवर कहते हैं। कर्मों के आठ भेद हैं, जिनके भेद प्रभेद अर्थात् उत्तर प्रकृतियां १४= हैं। बिना किसी प्रकार का चारित्र धारण किये एक मात्र मिथ्यात्व के दूर होने से ही कर्मों की १६ प्रकृतियों का बंध होना बंद हो जाता है, फिर अनन्तानुबंधी कषाय दूर होकर सम्यक्ती हो जाने से अन्यभी २५ प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस प्रकार चौथे गुणस्थानी अव्रति सम्यग्दृष्टि को ४१ कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इतना भारी काम एक मामूली से पुरुषार्थ से ही होने लगता है, फिर अणुव्रती श्रावक होने पर अन्यभी १० कर्म प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस ही प्रकार, पुरुषार्थ कर ज्यों ज्यों आगे बढ़ा जाता है त्यों त्यों अन्य भी अनेक कर्मों का बंध होना रुकता जाता है और अन्त को राग द्वेष के सर्वथा नाश हो जाने पर सब ही कर्मों का बंध होना रुक जाता है, यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है।

पुरुषार्थ होन के सब ही कार्य भ्रष्ट होते हैं, और पुरुषार्थी के सब ही कार्य सिद्ध होते हैं। यह बात सब ही सांसारिक कार्यों में भी स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य अपने

† देखो गोमट्टसार कर्म कांड गाथा ४३८, ४३९

पुरुषार्थ से खेती करके तरह तरह के अनाज, तरह तरह के फल पैदा करता है; एक वृक्ष की दूसरे वृक्ष के साथ कलम लगा कर उनके फलों को अधिक स्वादिष्ट और रसभरे बनाता है; अनाज को पीस-पोकर और आग से पका कर सत्तर प्रकार के सुस्वादु भोजन बनाता है। मिट्टी से ईंटें बनाकर, फिर उनको आग में पकाकर आकाश से बातें करने वाले बड़े बड़े ऊँचे महल चिनता है, हजारों प्रकार के सुन्दर-सुन्दर बरख बनाता है, लकड़ी, लोहा, तांबा, पीतल, सोना, चांदी आदि ढूँढ कर उनसे अनेक चमत्कारी वस्तुयें घड़ लेता है; कागज़ बनाकर पुस्तकें लिखता है और चिट्ठियां भेजता है; तार, रेल, मोटर, इजिजन, जहाज़, घड़ी, घंटा, फोन, सिनेमा आदिक अनेक प्रकार की अद्भुत कलें बनाता है और नित्य नई से नई बनाता जाता है; यह सब उसके पुरुषार्थ की ही महिमा है। पशु इस प्रकार का कोई भी पुरुषार्थ नहीं करते हैं, इस ही कारण उनको यह सब वस्तुयें प्राप्त नहीं होती हैं। उनका भाग्य वा कर्म उनको ऐसी कोई वस्तु बनाकर नहीं देता है, घास-फूस जीव जन्तु आदि जो भी वस्तु स्वयं पैदा हुई मिलती हैं उनपर ही गुज़ारा करना पड़ता है, बरसात का सारा पानी, जेठ असाढ़ की सारी धूप, शीतकाल का सारा पाला अपने नंगे शरीर पर ही भेलना पड़ता है, और भी अन्य अनेक प्रकार के असह्य दुख पुरुषार्थ हीन होने के कारण सहने पड़ते हैं !

इसके उत्तर में शायद हमारे कुछ भाई यह कहने लगें कि मनुष्यों को उनके कर्मों ने ही तो ऐसा ज्ञान और ऐसा पुरुषार्थ करने का बल दिया है जिससे वे ऐसी ऐसी अद्भुत वस्तुयें बना लेते हैं, पशुओं को उनके कर्मों ने ऐसा ज्ञान और पुरुषार्थ नहीं दिया है, इस कारण वे नहीं बना सकते हैं। मनुष्यों को उनके कर्म यदि ऐसा ज्ञान और

उद्यम करने की शक्ति न देते तो वे भी कुछ न कर सकते, यह सब भाग्य वा कर्मों की ही ता महिमा है जिससे मनुष्य ऐसे अद्भुत कार्य कर रहे हैं। परन्तु प्यारे भाइयो ! क्या आपके खयाल में तीर्थंकर भगवान को जो केवलज्ञान प्राप्त होता है, जिससे तीनों लोक के सब ही पदार्थ उनको बिना इन्द्रियों के सहारे के साक्षात् नज़र आने लग जाते हैं तो क्या केवलज्ञान की यह महान् शक्ति भी कर्मों की ही दी हुई होती है ? नहीं ऐसा नहीं है। यह सब शक्ति तो उनको उनके पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों के नाश करने से ही प्राप्त होती है, कर्मों की दी हुई नहीं होती है। कर्म तो जीव को कुछ देते नहीं किन्तु बिगाड़ते ही हैं। कर्मों का कार्य तो जीव को ज्ञान वा विचार शक्ति वा अन्य किसी प्रकार का बल देना नहीं है, किन्तु इसके विपरीत कर्मों का काम तो जीव के ज्ञान और बल वीर्य को नष्ट कर देने का ही है। ज्ञान और बल वीर्य तो जीव का निज स्वभाव है, जितना जितना भी किसी जीव का बलवीर्य नष्ट भ्रष्ट और कम हो रहा है वह सब उसके कर्म शत्रुओं का ही तो काम है, और जितना जितना जिस किसी जीव में ज्ञान और बल वीर्य है वह उसका अपना असली स्वभाव है, जिसको नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये कर्मों का काबू नहीं चल सका है। इस कारण मनुष्य अपने ज्ञान और विचार बल से जो यह लाखों करोड़ों प्रकार का सामान बनाता है वह सब अपनी निज शक्ति से ही बना रहा है, कर्मों की दी हुई शक्ति से नहीं। कर्मों का काबू चलता तो, वे तो उसकी यह शक्ति भी छीन लेते और कुछ भी न बनाने देते।

मनुष्यों की बनिसबत पशुओं पर कर्मों का अधिक काबू चलता है, इसी वास्ते उन बेचारों को यह कर्म उनकी ज़रूरतों का कुछ भी सामान नहीं बनाने देते हैं। कर्म तो

जीव के शत्रु हैं, इस कारण उनका काम तो एक मात्र बिगाड़ने का ही है—सँवारने का नहीं । भेद सिर्फ इतना ही है कि जब कोई कर्म हमको अधिक काबू में करके अधिक दुख पहुँचाता है तो उसको हम पाप कर्म कहते हैं और जब कोई कर्म कमजोर होकर हम पर कम काबू पाता है जिससे हम अपने असली ज्ञान गुण और बल वीर्य से कुछ पुरुषार्थ करने के योग्य हो जाते हैं और कम दुख उठाते हैं, तो इसको हम पुण्य कर्म कहने लग जाते हैं और खुश होते हैं ।

जिस प्रकार बीमारी मनुष्य को दुख ही देती है सुख नहीं दे सकती है, उसी प्रकार कर्म भी जीव को दुःख ही देते हैं सुख नहीं दे सकते हैं । बीमारी भी जब मनुष्य को अधिक दबा लेती है, उठने बैठने भी नहीं देती है, होशहवास भी खो देती है, खाना पीना भी बन्द कर देती है, नींद भी नहीं आती है, रात दिन असह्यपीड़ा ही होती रहती है, तब वह बीमारी बहुत बुरी और महानिंद्य कही जाती है; परन्तु जब योग्य औषधि करने से वह असह्य बीमारी कम होकर सिर्फ थोड़ी-सी कमजोरी आदि रह जाती है, मनुष्य अपने कारोबार में लगने योग्य हो जाता है, तो खुशियां मनाई जाती हैं, परन्तु यह खुशी उसको बीमारी ने नहीं दी है, किन्तु बीमारी के कम होने से ही हुई है । इसी प्रकार कर्म भी जब जीव को अच्छी तरह जकड़ कर कुछ भी पुरुषार्थ करने के योग्य नहीं रहने देते हैं तो वे खोटे व पापकर्म कहलाते हैं और जब जीव अपने शुभ परिणामों के द्वारा कषायों को मंद करके कर्मों को कमजोर कर देता है जिससे वह पुरुषार्थ करने के योग्य होकर अपने सुख की सामग्री जुटाने लग जाता है तो वह उन हलके कर्मों को शुभ व पुण्य कर्म कहने लग जाता है ।

कर्म बन्धन

कर्म क्या हैं, जीव के साथ कैसे उनका सम्बन्ध होता है और वे क्या कार्य करते हैं, इसका सारांश रूप कथन इस प्रकार है कि रागद्वेष के करने से आत्मा में एक प्रकार का ऐसा संस्कार पड़ जाता है जिससे फिर दोबारा रागद्वेष पैदा हो, उस दोबारा पैदा हुवे रागद्वेष से फिर रागद्वेष पैदा होता है, इस प्रकार एक चक्ररसा चलता रहता है। इसही को कर्म बन्धन होना कहते हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने के वास्ते कुम्हार चाक को डंडे से घुमाता है, परन्तु डंडा और कुम्हार दोनोंके अलग हो जाने पर भी कुछ देर तक चाक घूमता ही रहता है, डंडे के द्वारा घुमाने से चाक में घूमते रहने का संस्कार पड़ जाता है इस ही कारण घुमाना बन्द करने पर भी वह चाक कुछ देर तक घूमता ही रहता है, इस ही प्रकार डोरी लपेट कर जब लट्टू घुमाया जाता है तो डोरी अलग होने पर भी बहुत देर तक वह लट्टू आप से आप ही घूमता रहता है, इसी का नाम संस्कार हो जाना वा आदत पड़ जाना है। बार बार किसी बात को करते रहने से जो आदत पड़ जाती है, वह पक्की होकर छूटनी मुश्किल हो जाती है। भंग, चरस वा शराब आदि किसी नशे की आदत को तो छोड़ने का इरादा करने पर भी मुश्किल से ही छूटती है, नशे की बात तो दूर रही, जिन लोगों को खाने में तेज़ मिर्च डालकर चटपटा खाना खाने की आदत हो जाती है वे उसके खाने से नुक़सान होने पर भी उसका खाना नहीं छोड़ते हैं, यहां तक कि दुखती आंखों भी खाते हैं, जिससे और भी ज़्यादा आंख खड़कती है, तड़पते हैं, चिल्लाते हैं और सिर पीटते हैं, जानते हैं कि मिर्च खाने से ही यह तकलीफ़ बढ़ी है परन्तु फिर भी

खाते हैं और दुख उठाते हैं। यह ही हाल राग द्वेष आदि विषय कषायों का है जिनके करने से भी फिर २ वैसा ही करने का संस्कार पड़ता है और बार बार करते रहने से वह संस्कार ज़्यादा २ मज़बूत होकर छूटना मुश्किल हो जाता है, यह ही कर्म बंधन है जिसके चक्र में सब ही संसारी जीब पड़े हुये हैं। इस ही से जीव अपनी असली चाल भूलकर, इन रागद्वेष रूपी संस्कारों के अनुसार बिल्कुल ही उलटी पुलटी चाल चल रहा है।

परन्तु किसी भी वस्तु में कोई बिगाड़ बगैर किसी दूसरी वस्तु के मिलने के नहीं आ सकता है, यह पदार्थ-विद्या का अटल सिद्धान्त है। देह में भी रोग तब ही उत्पन्न होता है जब कोई पर पदार्थ (foreign matter, गैर मादा) आ घुसता है। घड़ी भी ठीक चलते २ तब ही ग़लत चाल चलने लगती है जबकि उसके पुर्जों में मैल आ जाता है पुर्जों को आसानी से चलते रहने के लिये उनको कुछ तेल आदि कोई चिकनाई लगानी पड़ती है, घड़ी की डिब्बिया या बक्स के अन्दर थोड़ी बहुत हवा तो ज़रूर होती ही है, उस हवा में हल्का सा जो कुछ गर्दा मिला हुआ होता है, उसके बहुत ही बारीक कण पुर्जों की चिकनाई के कारण उन पर जम जाते हैं और उनकी चाल को बिगाड़ देते हैं। इस ही प्रकार राग द्वेष के कारण आत्मा में भी किसी प्रकार का हलन चलन होने से देह के अन्दर के अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु जो आत्मा में घुल मिल सकते हों, वह उसमें मिल जाते हैं, यह ही पर पदार्थ है जिसके कारण आत्मा में बिगाड़ आता है। रागद्वेष ही इसमें चिकनाई का काम करते हैं। रागद्वेष रूपी चिकनाई के बिना कोई भी किसी प्रकार का मैल आत्मा को नहीं लग सकता है। मैल भी कहीं से खँच कर लाना नहीं पड़ता है, जिस प्रकार घड़ी के अन्दर की हवा में मिला

हुवा गर्दा ही पुजों को चिपट कर उसकी चाल को बिगाड़ देता है , बिल्कुल इस ही तरह शरीर के अन्दर जो भी अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु मौजूद होते हैं वह ही राग द्वेष रूपी चिकनाई के कारण आत्मा से चिपटकर उसकी चाल को बिगाड़ देते हैं; यह ही कर्म बंधन है जो दो प्रकार का कहा जाता है। आत्मा के अन्दर राग द्वेष का उत्पन्न होना तो भाव बंध कहलाता है और इस भाव बंध अर्थात् राग द्वेष के उत्पन्न होने के कारण उसकी चिकनाई से देह के अन्दर आत्मा के नज़दीक के जो अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु मैल के तौर पर आत्मा में लग जाते हैं वे द्रव्य बंध कहलाता है ! इस प्रकार आत्मा में मैल के लग जाने अर्थात् बिगाड़ के आ जाने से आत्मा की चाल में खराबी आकर फिर रागद्वेष पैदा होता है और उस रागद्वेष से फिर दोबारा सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं का मैल आत्मा में जम जाता है, जिससे फिर रागद्वेष उत्पन्न होता है, इस प्रकार एक चक्र सा चलता रहता है, भावकर्म से द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म से भाव कर्म पैदा होते रहते हैं, जिससे रहट की घड़ी की तरह यह चक्र चला ही करता है।

ऊपर के इस कथन से यह बात साफ़ खुल जाती है कि कर्म कोई खास वस्तु नहीं है जो कहीं से ढूँढ़ कर लाई जाती हो या आप ही कहीं से आती हो, किन्तु घड़ी के पुजों में चिपटने वाले उस मामूली गर्दे के समान जो घड़ी के अन्दर की हवा में मिला हुआ हो और घड़ी के पुजों से चिपटकर घड़ी की चाल को बिगाड़ देता हो, आत्मा में भी रागद्वेष रूपी चिकनाई लग जाने से देह के अन्दर की हवा में मिले हुवे गर्दे के बहुत बारीक कण जो अति सूक्ष्म होने के कारण आत्मा में घुल मिल सकते हों, वह ही

आस पास के मामूली परमाणु आत्मा से चिपटकर उसकी चाल को बिगाड़ देते हैं और द्रव्य कर्म कहलाने लगते हैं।

संस्कार कहो वा कर्म बंधन कहो, चाहे जो नाम रखो, बात असल यह ही है कि कषाय करने से फिर फिर कषाय पैदा होने के संस्कार पड़ते हैं। कषायों के उत्पन्न होते रहने से जीव की उन्मत्त की सी दशा हो जाती है, जिससे उसको अपने भले बुरे की कुछ भी तमीज़ नहीं रहती है, बुद्धि भ्रष्ट होकर अपने को कुछ से कुछ समझने लग जाता है; आप ही अपने हाथों अपना अहित करने को उतारू हो जाता है, विषय कषायों के बस होकर अपने को बेबस समझने लग जाता है, इस ही का नाम मोहनीय कर्म है जिसके दो भेद हैं एक दर्शन मोहनी और दूसरा चारित्र मोहनी; अपने को कुछ से कुछ समझ बैठना, बुराई को भलाई और अहित को हित मानने लगना यह ही दर्शन मोहनीय का काम है और यह ही मिथ्यात्व है ! कषायों का भड़कना, विषय कषाय में फंसना, रागद्वेष करना यह चारित्र मोहनीय का काम है।

कषायों के भड़कने से आत्मा की जानने की शक्ति पर भी पर्दा पड़ जाता है, वह शक्ति दो प्रकार की है, एक दर्शन और दूसरा ज्ञान, संसारी जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा जब किसी वस्तु को जानने की तरफ अपना उपयोग लगाता है तो तुरन्त ही उसको उस वस्तु का ज्ञान नहीं होता है किन्तु सब से पहले उसको यह ही मालूम होता है कि कुछ है, इस ही को दर्शन कहते हैं, फिर जब वह यह जानने लगता है कि उसका कुछ आकार है या उसका कोई रंग है या किसी प्रकार की कोई गंध है या किसी प्रकार का कोई स्वाद है, इत्यादि जब किसी भी इन्द्रिय का कोई विषय उस वस्तु में मालूम होने लगता है, तब ही से वह जानना ज्ञान कहलाता है। दर्शन पर पर्दा पड़ना अर्थात् उसमें खराबी

आना दर्शनावरण कहलाता है और ज्ञान में किसी प्रकार की खराबी आना ज्ञानावरण कहा जाता है। कषाय के कारण जीव की आत्म शक्तियों में, उसके बलवीर्य में भी रुकावट पड़ने लग जाती है, जिसको अन्तराय कहते हैं। इस प्रकार कषायों के उत्पन्न होने से दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय और अन्तराय यह चार कर्म आत्मा के असली स्वभाव को घात करते हैं, इस ही वास्ते घातिया कहलाते हैं, कषायों के सर्वथा नाश होने पर, यह चारों ही कर्म नाश होकर अनन्तदर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति नाम का आत्म का असली स्वरूप प्रगट हो जाता है।

कषायों के कारण आत्मा में मैल लग जाने से उसकी कुछ ऐसी हालत भी हो जाती है जिससे उसके असली स्वभाव में तो फ़रक नहीं आता है किन्तु देह में कायम रहकर आयु पूर्ण होने तक संसार में ज़रूर विचरना पड़ता है। ऐसी हालत पैदा कराने वाले कर्म अघातिया अर्थात् जीव के स्वभाव को घात न करने वाले कहलाते हैं। यह अघातिया कर्म भी चार प्रकार के हैं, वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम। इन्द्रियों के विषय का अनुभव कराना वेदनीय कर्म का काम है, इसके दो भेद हैं, साता और असाता, साता से सुख का अनुभव होता है और असाता से दुख का, जैसा कि गोमट्टसार कर्मकांड गाथा १४ में लिखा है,

अक्वाणं अणुभवं वेयणीयं सुहसरुवयं सादं

दुक्ख सरुवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥

अर्थ पं० टोडरमल जी कृत—‘इन्द्रियन के अपने विषयन का अनुभवन—जानना तो वेदनीय है, तहां सुख स्वरूप साता है, दुख स्वरूप असाता है तिन सुख दुखन को वेदयति कहिये अनुभव करावे सो वेदनीय कर्म है।

परन्तु यह वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के उदय के बल से अर्थात् रागद्वेष के होने पर ही सुख दुख का अनुभव करा सकता है; जैसा कि गोमट्टसार कर्मकांड गाथा १६ में लिखा है ।

घादिव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।

इदि घादीणं मज्जे मोहस्सादिमिह पठिदन्तु ॥

अर्थ पं० टोडरमल जी कृत—वेदनीय नामाकर्म सो घातिया कर्मवत मोहनीय कर्म का भेद जो रति अरति तिनके उदय काल कर ही जीव को घाते, सुख दुख स्वरूप साता असाता कौं कारण इन्द्रियन का विषय तिनका अनुभव करवाय घात करे है ।

कुछ समय तक किसी एक शरीर में जीव को ठहराये रखना यह आयु कर्म का काम है, किसी प्रकार का शरीर प्राप्त कराना यह नाम कर्म का काम है । ऊँच-नीच भव वा ऊँच नीच गति प्राप्त कराना यह गोत्र कर्म का काम है ।

इस प्रकार इन आठ कर्मों के कार्य को जान लेने पर यह बात साफ़ हो जाती है, कि कर्मों का जो कुछ भी जोर चलता है वह उस ही पर चलता है जिसके वे कर्म होते हैं । कर्म करने वाले जीव के सिवाय अन्य किसी भी जीव पर वा उसके शरीर के सिवाय अन्य किसी भा पुद्गल पदार्थ पर उनका कोई अधिकार नहीं होता है ।

निमित्त कारण

संसार में अनन्तानन्त जीव और हजारों लाखों ग्रह तारे नक्षत्र और आग पानी हवा मिट्टी आदिक अनन्त पुद्गल पदार्थ भरे पड़े हैं, जो अपने अपने स्वभावानुसार अपना-अपना काम करते रहते हैं । उसी संसार में हम भी रहते हैं, हमारा और इन सब जीव और अजीव

पदार्थों का संयोग इसी तरह हो जाता है जिस तरह रात को बसेरे के लिये एक पेड़ पर आये हुए पक्षियों का वा एक सराय में इकट्ठे हुए मुसाफ़िरो का—

पक्षियों वा मुसाफ़िरो का यह सब संयोग एक पेड़ पर आ बैठने वा एक सराय में आकर ठहरने के कारण ही होता है, कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिंचा हुआ आकर इकट्ठा नहीं होता है न कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिंच ही सकता है। इस ही अचानक क्षण भर के संयोग में हम किसी से राग कर लेते हैं और किसी से द्वेष, फिर इसी रागद्वेष के कारण उनके अनेक प्रकार के परिवर्तनों, उनके सुख और दुःखों को अपना सुख और दुःख मान कर सुखी और दुःखी होने लग जाते हैं। इसी प्रकार जीव का अपने कुटुम्बियों नगर-निवासियों और देशवासियों से संयोग और वियोग होता रहता है, ऐसा ही जीवों का यह संयोग संसार की अनेकानेक निर्जीव वस्तुओं से भी होता रहता है।

एक कामी पुरुष बहुत दिन पीछे रात को अपनी स्त्री से मिलता है और चाहता है कि रात लम्बी होजाय इसी कारण नगर का घन्टा बजने पर भुंभलाता है कि क्यों ऐसी जल्दी २ घन्टा बजाया जा रहा है; फिर दिन में जब अपनी प्यारी स्त्री से बिछोहा रहता है तो तड़फता है कि क्यों देर देर में घन्टा बज रहा है। इसी को किसी कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

कल शबेवस्ल * में क्या जल्द बजें थी घड़ियां ।

आज क्या मरगये घड़ियाल बजाने वाले ॥

इसी प्रकार कभी रात होती है कभी दिन, कभी चांदनी होती है कभी अंधेरी, मौसम बदलती है, जाड़ा पड़ता है, गर्मी होती है, पानी बरसता है, बादल होता है, धूप निकलती है, हवा कभी ठन्डी चलती है, कभी गर्म, नदियां बहती हैं, पानी का बहाव

आता है, अन्य भी अनेक प्रकार के अलटन-पलटन होते रहते हैं। संसार का यह सारा चक्र हमारे कर्मों के आधार नहीं चल रहा है, किन्तु घड़ियाल के घंटों की तरह सब कार्य संसार की अनन्तानन्त वस्तुओं के अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही हो रहा है। परन्तु हम अपनी इच्छा के अनुसार कभी रात चाहते हैं कभी दिन, कभी जाड़ा चाहते हैं कभी गर्मी, कभी बादल चाहते हैं, कभी धूप, कभी वर्षा चाहते हैं कभी सूखा। इसी प्रकार संसार के अन्य भी सभी कामों को अपनी इच्छा के अनुसार ही होते रहना चाहते हैं, परन्तु यह सारा संसार हमारे आधीन न होनेसे जब यह कार्य हमारे अनुसार नहीं होते हैं तो, हम दुःखी होते हैं और अपने भाग्य व कर्मों को ही दोष देने लग जाते हैं। किन्तु इसमें हमारे कर्मों का क्या दोष? भूल तो हमारी है जो हम सारे संसार को, जो न हमारे आधीन है न हमारे कर्मों के ही आधीन, अपने ही अनुकूल चलाना चाहते हैं, नहीं चलता है तो दुःखी होते हैं।

रेलमें सफ़र करते समय इधर उधरसे आ-आकर अनेक मुसाफ़िर बैठते रहते हैं, कोई उतरता है कोई चढ़ता है, यों ही तातासा लगा रहता है—तरह तरह के पुरुषोंसि संयोग होता रहता है, किसीसे दुख मिलता है, किसीसे सुख। कोई बीमार है, हरदम ग्यांसता है थूकता है, छींकता है, जिससे हमको दुख होता है। किसी के शरीर और कपड़ों में बू आरही है, जिससे हमारा नाक फटा जा रहा है; कोई सुगन्ध लगाये हुये हैं, जिसकी महक से जी खुश होता है; कोई सुन्दर गाना गाता है, कोई दूसरे मुसाफ़िरों से लड़ रहा है, इन सब ही के भले बुरे कृत्यों से कुछ न कुछ दुख सुख हमको भी भोगना ही पड़ता है। कारण इसका एकमात्र यह ही है कि रेल में सफ़र करने के कारण हमारा उनका संयोग हो गया है। हमारे कर्म हमको दुख सुख देने के वास्ते उनको उनके घरों से खँचकर नहीं ले आये हैं, हमारी ही तरह वह सब भी अपनी र

ज़रूरतों के कारण ही यहां रेल में सफ़र करने को आये हैं। हमारे कर्मों का तो कुछ भी ज़ोर उन पर नहीं चल सकता है और न उनके कर्मों का कुछ ज़ोर हमारे ऊपर ही हो सकता है।

इस ही प्रकार नरक स्वर्ग आदि अनेक गतियों से आ आकर जीव एक कुटुम्ब में, एक नगर में और एक देशमें इकट्ठे हो जाते हैं, वह भी सब अपने अपने कर्मानुसार ही आ-आ कर जन्म लेते हैं, हमारे कर्म उनको खँच कर नहीं ला सकते हैं। रेलके मुसाफ़िरों की तरह एक स्थान में इकट्ठा होकर रहने के संयोग से उनके द्वारा भी हमारा अनेक प्रकार का बिगाड़ संवार होता है जो हमें झेलना ही पड़ता है। दृष्टान्त रूप मान लीजिये कि एक हमारे पड़ौसी के यहां बेटे का विवाह है। जिसके कारण रात दिन गाजा बाजा, गाना नाचना, खाना खिलाना आदि अनेक उत्सव होते रहते हैं, उनके इस शोर-गुलसे रातको हमको नींद भर सोना नहीं मिलता है, जिससे हम दुखी होते हैं; तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमको यह थोड़ा सा दुख पहुँचाने के वास्ते पड़ौसी के यहां उसके बेटे का विवाह रचवा दिया है ?

ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त यह हो सकता है कि पड़ौसीके यहां कोई जवान मौत हो गई है, जिससे उसकी जवान विधवा रात दिन विलाप करती है, उसके इस विलापसे हमारी नींदमें खलल पड़ रहा है, तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमारी नींदमें खराबी डालनेके वास्ते जवान पड़ौसी को मार कर उसकी जवान स्त्रीको विधवा बनाया है ? नहीं, ऐसा मानना तो बिल्कुल हाँ हंसी की बात होगी। असल बात तो यह ही माननी पड़ेगी कि ब्याह वालेके यहां भी उसके अपने ही कर्मों से विवाह प्रारम्भ हुआ और मरने वाले के यहां भी उसके अपने ही कर्मोंसे मौत हुई, परन्तु पड़ौसमें रहने के संयोग से वह हमारी नींद में खलल डालनेके निमित्त ज़रूर हो गये।

इसको और भी ज़्यादा स्पष्ट करनेके लिये दूसरा दृष्टान्त यह हो

सकता है कि कुछ वर्ष पहले यहां हिन्दुस्तान में लाखों मन चीनी जावा से आती थी और खूब मंहगी बिकती थी, जिससे हर साल करोड़ों रुपया हिन्दुस्तान का जावा चला जात था, हिन्दुस्तान कंगाल और वह मालामाल होता जाता था, लेकिन अब कुछ सालसे हिंदुस्तानियों ने यहां ही चीनी बनानी शुरू कर दी है, जिससे यहां चीनी भी सस्ती हो गई है और रुपया भी यहां का यहां ही रहने लग गया है, परन्तु जावावालोंकी चीनी की बिक्री बन्द होनेसे उनके सब कारखाने पट होगये हैं, तो क्या जावावालों के खांटे कमौने ही जावावालों का हानि पहुँचानेके वास्ते हिन्दुस्तानवालों से चीनी बनानेके कारखाने खुलवा दिये हैं ? नहीं ऐसा नहीं माना जासकता है, यहां वालोंने जो कारखाने खोले हैं वह तो अपनेही कमौसे वा अपने ही पुरुषार्थसे खोले हैं, जावावालों के खांटे कमौ से वह क्यों खोलते, हां कारखाने खोलकर जावावालों को नुकसान पहुँचाने के निमित्त कारण वह जरूर हो गये हैं ।

अकाल मृत्यु

निमित्त कारण जीवों को कैसा नाच नचाता है और क्या-से-क्या कर डालता है, यह बात अकाल मृत्युके कथनसे बहुत अच्छी तरह समझ में आसकता है । कुंद कुंद स्वामी ने भाव पाहुड़ की गाथा नं० २५, २६ में अकाल-मृत्यु का कथन इस प्रकार किया है—हे जीव ! मनुष्य और तिर्यच पर्यायमें तूने अनेक बार अकाल मृत्यु के द्वारा महा दुख उठाया है, विष के खाने से वा विषैले जानवरों के काटे जानेसे, किसी असह्य दुखके आपड़नेसे, अधिक खून निकल जानेसे, किसी भारी भय-से, हतियार के घातसे, महा संक्लेशरूप परिणामों के होने-से—अर्थात् अधिक शोक माननेसे वा अधिक क्रोध करने से—आहार न मिलनेसे, सांसके रुकनेसे, बरफ़में गलजानेसे, आगमें जलजानेसे, पानीमें डूबजानेसे, वृक्ष वा अन्य किसी

ऊँचे स्थानसे गिरपड़नेसे, शरीरमें चोट लगनेसे, अन्य भी अनेक कारणसे अकाल मृत्यु होती रहती है। इसी प्रकार गोमट्टसार कर्मकांड की निम्न गाथा ५७ में भी विष, रक्त-क्षय, भय, शस्त्रघात, महावेदना, सांस रुकना, आहार न मिलना आदि कारणोंसे बंधा आयुका छीजना अर्थात् समय से पहले ही मरण होजाना लिखा है।

विसवेयणरत्तकवयन्नयसत्थग्गहणसंकिलेसेहि ।

उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र ५३ का भाष्य करते हुए श्री अकलंक स्वामी ने राजवार्तिक में और विद्यानन्द स्वामी ने श्लोक वार्तिकमें मरणकाल से पहले मृत्यु का हो जाना सिद्ध किया है और लिखा है कि अकाल मृत्यु के रोकने के वास्ते आयुर्वेद में रसायन आदिक बर्तना लिखा है जिससे भी अकाल मृत्यु सिद्ध है। इस ही प्रकार अन्य शारीरिक रोगों के दूर करने के वास्ते भी औषधि आदिक बाह्य निमित्त कारणों का जुटाना जरूरी बताया है। भगवती आराधनासार गाथा ८२३ का अर्थ करते हुये पंडित सदासुख जी ने अकाल मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया है—

कितनेक लोग ऐसे कहे हैं, आयु का स्थिति-बंध किया सो नहीं छिदे है, तिनकुं उत्तर कहै हैं—जो आयु नहीं ही छिदता तो विष भक्षण तैं कौन पराङ्मुख होता अर उखाल (कै कराना) विष पर किस वास्ते देते, अर शस्त्र का घाततैं भय कौन बास्ते करते अर सर्प, हस्ती, सिंह, दुष्ट मनुष्यादिकन को दूरहीतैं कैसे परिहार करते; अर नदी समुन्द्र कूप वापिका तथा अग्नि की ज्वाला में पतन तैं कौन भयभीत होता। जो आयु पूर्ण हुआ बिना मरण ही नहीं तो रोगादिक का इलाज काहेकुं करते, तातैं यह निश्चय जानहुं—जो आयु

का घात का बाह्य निमित्त मिल जाय तत्काल आयु का घात होय ही जाय, इसमें संशय नहीं है, वहुत आयु कर्म की नाई अन्य कर्म भी जो बाह्य निमित्त परिपूर्ण मिल जाय तो उदय हो ही जाय, नीम-भक्षण करेगा ताके तत्काल असाता वेदनीय उदय आवे ही है, मिश्री इत्यादिक इष्ट वस्तु भक्षण करे ताके सातावेदनीय उदय आवे ही है तथा वस्त्रादिक आड़े आ जाय तो चक्षु द्वारे मतिज्ञान रुक जाय, कर्ण में डाटा देवें तो कर्ण द्वारे मतिज्ञान रुक जाय, ऐसे ही अन्य इन्द्रियन के द्वारे ज्ञान रुके ही है; नशा आदिक द्रव्यतें श्रुत-ज्ञान रुक जाय है, मैस की दही लस्सन आदिक द्रव्य के भक्षण तें निद्रा की तीव्रता होय ही है, कषायण के कारण मिले कषायण की उदीर्णा होंवे ही है, पुरुष का शरीरकूं तथा स्त्री का शरीरकूं स्पर्शनादिक कर वेद की उदीर्णातें काम की वेदना प्रज्वलित होय ही है, अरति कर्मकूं इष्टवियोग, शोक कर्मकूं सुपुत्रादिक का मरण इत्यादिक कर्म की उदय उदीर्णादिककूं करे ही है। तातें ऐसा तात्पर्य जानना, इस जीव के अनादि का कर्म-संतान चला आवे है, अर समय समय नवीन नवीन बन्ध होय है, समय समय पुरातन कर्म रस देय देय निजरे हैं, सो जैसा बाह्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मिल जाय तैसा उदय में आ जाय, तथा उदीर्णा होय उत्कट रस देवे। अर जो कोऊ या कहै, कर्म करेगा सो होयगा, तो कर्म तो या जीव के सर्व ही पाप पुण्य सत्ता में मौजूद हैं, जैसा जैसा बाह्य निमित्त प्रबल मिलेगा, तैसा तैसा उदय आवेगा, और जो बाह्य निमित्त कर्म के उदय को कारण नहीं, तो दीक्षा लेना, शिक्षा देना तपश्चरण करना सत्संगति करना, वारिज्य व्यवहार करना, राज संवादि करना, खेती करना, औषधि संवन करना, इत्यादिक सर्व व्यवहार का लोप हो जाय, तातें ऐसी भावनाकूं परमागमते निश्चय करना जो आयु कर्म का

परमाणु तो साठ वर्ष पर्यंत समय समय आवा जोग्य निषेकनि में बांटाने प्राप्त भया होय अर बीच में बीस बरस की अवस्था ही में जो विष शस्त्रादिक का निवित्त मिल जाय तो चालीस बरस पर्यंत जो कर्म का निषेक समय समय निर्जरता सो अन्तर्महूर्त में उदीर्णा में प्राप्त होय इकट्ठा नाशनें प्राप्त होय, सो अकाल मरण है ।”

भावार्थ इस कथन का यह है कि जिस प्रकार अंगीठी में जलते हुए कोयले भर दिये जावें तो साधारण रीति से मन्द-मन्द तौर पर जलते हुए वे कोयले एक घंटे तक जलते रहेंगे, कोयलों के थोड़े थोड़े कण हरदम जल जल कर राख होते रहेंगे और एक घंटे में सब ही जलकर खतम हो जायेंगे, परन्तु अगर तेज़ हवा चलने लगे या कोई जोर से पंखा भलने लगे, या फूंक मारने लगे या उन कोयलों पर मिट्टी का तेल डाल दे, तो वे कोयले एकदम भड़क उठेंगे और दस पांच मिनट में ही जलकर राख हो जायेंगे । इस ही प्रकार हर एक कर्म का भी बंधा हुआ समय होता है, उस बंधे हुए समय तक वह कर्म साधारण रीति से मन्द मन्द गति से अपना असर दिखाता हुआ हरदम कण कण नाश होता रहता है, समय पूरा होने तक वह सब खतम हो जाता है, इस ही को कर्मों का उदय होना, भड़ जाना या निर्जरा होते रहना कहते हैं । परन्तु अगर किसी जोरदार निमित्त कारण से कर्म का वह हिस्सा भी जो देर में उदय होता, जल्दी उदय में आ जाय तो उसे उदीर्णा कहते हैं । दृष्टांत रूप से किसी की आयु साठ बरस की है लेकिन बीस बरस की ही अवस्था में उसको सांप ने काट खाया या किसी ने तलवार से सिर काट दिया; जिससे वह मर गया तो यह समझना चाहिये कि उसकी बाकी बची हुई चालीस बरस की आयु की उदीर्णा होगई, ऐसे ही अन्य भी सभी कर्मों

को उदोर्णा निमित्त कारणों के मिलने से होती रहती है।

अकाल मृत्यु के इस कथन से यह तो ज़ाहिर ही है कि जिस जीव की आयु ६० वर्ष की थी, उसको उसके आयु कर्म ने ही २० वर्ष की उमर में नहीं मार डाला है, अर्थात् उसके आयु कर्म ने ही ऐसा कारण नहीं मिलाया है, जिससे वह २० वर्ष की ही आयु में मर गया। आयुकर्म का जोर चलता तो वह तो उसको ६० वर्ष तक ज़िन्दा रखता; परन्तु निमित्त कारण के मुकाबले में आयुकर्म की कुछ न चल सकी; तब ही तो ४० वर्ष पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। जब आयु जैसे महा-प्रबल कर्म का यह हाल है तब अन्य कर्मों की तो मजाल ही क्या है, जो निमित्त कारणों का मुकाबला कर सकें—उनको अपना कार्य करने से रोक सकें—तब ही तो कोई ज़बरदस्त आदमी किसी को जान से मार सकता है, लाठी जूते थप्पड़ से भी पीट सकता है, उसका रहने का मकान भी छीन सकता है, धन सम्पत्ति भी लूट सकता है, उसकी स्त्री-पुत्र को भी उठा कर ले जा सकता है, चोरी भी कर सकता है, अन्य भी अनेक कार के उपद्रव मचा सकता है, कर्मों में यह शक्ति नहीं है कि इन उपद्रवों को रोक दें। कर्मों में यह शक्ति होती तो संसार में ऐसे उपद्रव ही क्यों होने पाते? परन्तु संसार में तो बड़ा हाहाकार मचा हुआ है, जीव ही जीव को खा रहा है, सब ही जीव एक दूसरे से भयभीत होकर अपनी जान बचाते फिर रहे हैं, चूहे बिल्ली के डर से इधर-उधर छिपते फिरते हैं, बिल्ली कुत्ते से डर कर दुबकती फिरती है, मक्खियों को फंसाने के लिए मकड़ी ने अलग जाल फैला रक्खा है, चोर डाकू अलग ताक लगा रहे हैं, दूकानदार ग्राहक को लूटने की धुन में हैं और ग्राहक दूकानदार को हो ठगने की फ़िकर में हैं, धोखा, फ़रेब जाल-साज़ी का बाज़ार गरम हो रहा है, एक को एक हड़प करना

चाह रहा है। इसी से अपने अपने कर्मों के भरोसे न रहकर सब कोई पूरी पूरी सावधानी के साथ अपने अपने जान माल की रक्षा का प्रबन्ध करता है, चाँकी पहरा लगाता है, अड़ौसी पड़ौसी और नगर निवासियों का गुट्ट मिलकर हर कोई एक दूसरे की रक्षा करने के लिये तैयार रहता है, रक्षा के वास्ते ही राज्य का प्रबन्ध किया जाता है, और बड़ा भारी कर राज्य को दिया जाता है।

कर्मों का काम निमित्त मिलाना नहीं है

ऊपर के शास्त्रीय कथन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि बुरे वा भले किसी भी प्रकार के निमित्त मिलाने का, दुख वा सुखकी सामग्री जुटानेका काम कर्मोंका नहीं है; तब ही तो प्रत्येक मनुष्य कर्मोंके भरोसे न बैठकर अपने सुखकी सामग्री जुटानेके वास्ते रातदिन पुरुषार्थ करता है, खेती, सिपाहीगिरी, कारीगरी, दस्तकारी, दुकानदारी, मिहनत-मजदूरी, नौकरी-चाकरी आदि सब ही प्रकारके धंधोंमें लगा रह कर खून पसीना एक करता रहता है, यहां तक कि अपने आराम को भी भुला देना पड़ता है और तबही ज्यों त्यों करके अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनेके योग्य होता है। जो मनुष्य पुरुषार्थ नहीं करता है, कर्मोंके ही भरोसे पड़ा रहता है वह नालायक समझा जाता है और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है।

उपरके शास्त्रीय कथनमें साफ़ लिखा है कि कसीने नीमके कड़वे पत्ते चबाये, जिससे उसका मुंह कड़वा होगया तो उसके असातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी बुरा कर दिया अर्थात् उसको दुखका अनुभव करादिया और जब उसने मिठाई खाई, जिससे उसका मुंह मीठा हो गया, तो सातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी खुश कर दिया, उसको सुखका अनुभव करा दिया। भावार्थ—कड़वी-मीठी

वस्तु का जुटाना कर्मों का काम नहीं है, यह काम तो मनुष्य के स्वयं अपने पुरुषार्थ का वा दूसरों के द्वारा मिलाये हुए निमित्त का हा है। कर्म का काम तो एकमात्र इतना ही है कि जैसा निमित्त मिले उसके अनुसार जीव को सुखी वा दुखी करदे।

इस एक ही संसार में अनन्ते जीवों और अनन्ते पुद्गल पदार्थों का निवास है और वे सब अपना २ काम करते रहते हैं, जिससे आपस में उनकी मुठभेड़ होती रहती है—रेल व सगाय के मुसाफ़िरों की तरह संयोग-वियोग होता ही रहता है। एक का कर्म किसी दूसरे को खींच नहीं लाता है और न खींचकर ला ही सकता है।

कर्मों का काम तो जीव में एक प्रकार का बिगाड़ वा रोग पैदा करते रहना ही है। रोगी को जब रोग के कारण जाड़ा लगता है तो ठंडी हवा बुरी लगती है, परन्तु उसका रोग उसको दुख देने के वास्ते ठंडी हवा नहीं चलाता है, न ठंडी हवा चलाने का रोग में सामर्थ्य ही होती है, रोग का तो सिर्फ इतना ही काम है कि ठंडी हवा लगे तो रोगी को दुख हो, फिर जब रोगी को तेज़ बुखार चढ़ जाता है तो ठंडी हवा अच्छी और गर्म हवा बुरी लगने लगती है, तब भी उसके रोग में यह सामर्थ्य नहीं होता है कि उसको दुख देने के वास्ते गर्म हवा चला दे। इसी प्रकार कर्म भी जीव को सुख-दुख पहुँचाने के वास्ते संसार के जीवों तथा पुद्गल पदार्थों को खींचकर उसके पास नहीं लाते हैं, उनका तो इतना ही काम है कि उसके अन्दर ऐसा भाव पैदा कर दें जिससे वह किसी चीज़ के मिलने से सुख-धोयने लगे और किसी से दुख।

कफ़ के रोगी को मिठाई खाने की बहुत ही प्रबल इच्छा होती है, मिठाई खाने में सुख मनिता है और खटाई

से दुख । पित्त का रोगो खटाई से खुश होता है और मिठाई से दुखी । परन्तु रोगो के रोग का यह काम नहीं है कि वह उसको सुखी वा दुखी करने को कहीं से मिठाई या खटाई लाकर उसे खिलादे । इसी प्रकार कर्म भी जीवों में तरह तरह की विषय और कषाय पैदा करते रहते हैं; परन्तु उनका यह काम नहीं है कि जीव में जैसी विषय या कषाय पैदा की है उसके अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुयें भी इधर उधर से खींच कर उसको लादें ।

क्या बिल्ली को भूख लगने पर उसके ही शुभ कर्म चूहों को बिल में से बाहर निकाल कर फिराने लगते हैं, जिससे बिल्ली उनको आसानी से पकड़ कर खाले, या चूहे के खोटे कर्म ही बिल्ली को पकड़ कर लाते हैं, जिससे वह चूहों को मार डाले ? यह बात ठीक है तो जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को मार डालता है तो मारने वाला क्यों पकड़ा जाता है और क्यों अपराधी ठहराया जाता है ? उसको तो मरने वाले के खोटे कर्मों ने ही मारने के वास्ते मजबूर किया था, तब उस बेचारे का क्या क़सूर ? परन्तु ऐसा मानने से तो संसार का सब ही व्यवहार गड़बड़ में पड़ जाता है और राज्य का भी कोई प्रबन्ध नहीं रहता है । ऐसी हालत में हिंसक, शिकारी, चोर, डाकू, लुटेरा, धोकेबाज़ ज़ालिम, जार, जालसाज़, बदमाश, आदि कोई भी अपराधी नहीं ठहरता । जो जुल्म किसी पर हुआ है वह सब जब उस ही के कर्मों से हुआ—जब खुद उसी के कर्म चोर डाकू व अन्य किसी ज़ालिम को जुल्म करने के वास्ते खींचकर लाते हैं, तब जुल्म करने वाले का क्या क़सूर ? वह क्यों पकड़ा जावे और क्यों सज़ा पावे ?

इसी प्रकार यह बात किसी तरह भी नहीं मानी जा सकती है कि भला बुरा जो कुछ भी होता है वह सब अपने

ही कर्मों से होता है, अपने ही कर्म सब प्रकार के निमित्त कारणों को जुटाते हैं। ऐसा हरगिज़ नहीं है और न ऐसा माना ही जा सकता है, कर्म जिसके किये हुवे हों उनका असर उस ही पर हो सकता है, न कि दूसरों पर, कर्म करने वाले पर उसके कर्म चाहे जो जोर चलावें, चाहे जिस तरह नचावें पर दूसरों पर तो वह कुछ जोर नहीं कर सकते हैं, दूसरों से तो उलटा सीधा वह कुछ कार्य नहीं करा सकते हैं, कोई पैदा होता है तो अपने कर्मों से, मरता है तो अपने कर्मों से, दूसरों के शुभकर्म न किसी को खींच लाकर उसके यहां पैदा करा सकते हैं और न दूसरों के अशुभ कर्म किसी को मारकर उससे उसका वियोग ही करा सकते हैं। संयोग-वियोग तो सराय के मुसाफिरों के भेल के समान एक ही संसार में रहने के कारण आप से आप ही होता रहता और यह ही संयोग वियोग अच्छा बुरा निमित्त बन जाता है। अच्छे अच्छे निमित्तों के मिलने से जीव का उद्धार हो जाता है, जैसे कि सद्गुरुओं के उपदेश से व सन्तशास्त्रों के पढ़ने से जीव का अनादि कालीन मिथ्यात्व छूटकर सम्यक् श्रद्धान की प्राप्ति हो जाती है; वीतराग भगवान् का वीतराग मुद्रा को देखकर, वीतराग भगवान् के गुणों का याद करने से, गुणगानरूप स्तुति करने से और वीतरागता का उपदेश सुनने से सम्यक् चरित्र धारण करने का उत्साह पैदा होता है, जिससे सत्पथ पर लगकर जीव अपना कल्याण-कर लेता है-सदा के लिये दुखों से छूट जाता है। छोटे निमित्तों के मिलने से जीव विषय-कषायों में फंसकर अपना सत्यानाश कर लेता है, कर्मों की कड़ी जंजीरों में बन्धकर नरक और तिर्यञ्चगति के दुख उठाता है।

अच्छे निमित्तों को मिलाना और खोटे निमित्तों से बचना ही पुरुषार्थ है

अनादि कालसे ही विषय-कषायों में फंसा हुआ यह जीव विषय-कषायों का अभ्यासी हो रहा है, इसही कारण विषय-कषायों का बढ़काने वाले निमित्तोंका असर उसपर बहुत जल्द होता है, विषय-कषाय की बातोंके ग्रहण करनेके लिये वह हर वक्त तैय्यार रहता है। इसके विपरीत विषय-कषायोंको रोकने, दवाने, काबूमें रखने अथवा सर्वथा छोड़ देने की बात उसका बिलकुल ही अनोखी मालूम होती है और इसीसे यह बहुत ही कठिनताके साथ हृदयमें बैठती है। ऐसी हालतमें बड़ी सावधानी के साथ खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी, उनको अपने पास तक भी न आने देनेकी और पूरी कोशिशके साथ उत्तम उत्तम निमित्तोंको मिलाने रहनेकी बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है। खोटे निमित्त जीवके उससे भी अधिक शत्रु हैं; जितने कि उसके खोटे कर्म क्योंकि ये खोटे निमित्त ही तो मोती कषायोंको जगा कर जीवसे महा खोटे कर्म कराते हैं और उसका सत्यानाश कर डालते हैं। इसी ही कारण शास्त्रोंमें महामुनियों तकको भी खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी भारी ताकीद की गई है, जिसके कुछ नमूने इस प्रकार हैं।

भगवतो आराधनासार के नमूने—

गाथा १८९—एकान्तमें माता, पुत्री, बहनको देखकर भी काम भड़क उठता है। गाथा १२०९—जैसे कोई समुद्रमें घुसे और भीगे नहीं तो बड़ा आश्चर्य है, ऐसे ही यदि कोई विषयोंके स्थानमें रहे और लित न हो तो आश्चर्य ही है। गाथा ३३५—हे मुनि ! अग्नि समान और विष समान जो आर्यिकाओं का संग है उसको त्याग। गाथा ३३८—यदि अपनी बुद्धि स्थिर भी हो, तो भी आर्यिकाकी संगति से इस प्रकार चित्त पिघल जाता है जैसे अग्निसे घी। गाथा १०८९—जैसे किसी को शराब पीता देखकर वा शराब की बातें सुनकर शराबी

को शराब पीने की भड़क उत्पन्न हो जाती है, उसही प्रकार मोही पुरुष विषयोंको देखकर वा उनकी बात सुनकर विषयों की अभिलाषा करने लगजाता है ।

मूलाचार के नमूने

गाथा ९५४—संगतिसे ही सम्यक्त्व आदि की शुद्धि बढ़ती है और संगतिसे ही नष्ट होती है, जैसे कि कमलकी संगतिसे पानी सुगंधित हो जाता है, और अग्निकी संगतिसे गरम । गाथा ९९०—काठ की बनी हुई स्त्रीसे भी डरना चाहिये, क्योंकि निमित्त कारण के मिलने से चित्त चलायमान होता है ।

निमित्त कारण के मिलने से कर्म किस तरह भड़क उठते हैं इसका उल्लेख गोम्मटसार में संज्ञाओं के वर्णन में इस प्रकार मिलता है ।

गाथा १३३—जिसके निमित्त से भारी दुःख प्राप्त हो ऐसी बांछा को संज्ञा कहते हैं । आहार, भव, मैथुन और परिग्रह यह चार संज्ञायें हैं ।

गाथा १३४—आहार के देखने वा याद करने से पेट भरा हुआ न होने पर असातावेदनीय कर्म की उदय उदीरणा होकर आहार की इच्छा पैदा होती है ।

गाथा १३५—किसी भयंकर पदार्थ के देखने वा याद करने से शक्ति के कम होने पर भयकर्म की उदय उदीरणा होकर भय उत्पन्न होता है ।

गाथा १३६ स्वादिष्ट, गरिष्ठ, रसयुक्त भोजन करने से, कुशील सेवन करने वा याद करने से वेद कर्मकी उदय उदीरणा होकर काम-भोगकी इच्छा होती है ।

गाथा ९३७—पदार्थोंके देखने वा याद करनेसे लोभ कर्मकी उदय-उदीरणा होकर परिग्रहकी इच्छा होती है ।

निमित्त मिलने पर ही कर्म फल देते हैं

गोमट्टसार के इस कथन का सार यही है कि निमित्त कारणों के मिलने से कर्म उदय में आ जाते हैं, कषाय भड़काने का अपना कार्य करने लग जाते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझा देने के लिये हम फिर जलते हुए कोयलों से भरी हुई अंगोठी का दृष्टान्त देते हैं, जिस तरह अंगोठी में भरे हुए कोयले जब तक अच्छी तरह आग नहीं पकड़ लेते हैं तब तक वह अंगोठी पर रखी हुई चोड़ को पकाना शुरू नहीं करते हैं, उसी तरह नवीन कर्म भी जब तक पुराने कर्मों से घुलमिल नहीं जाते हैं तबतक वे भी फल देना शुरू नहीं करते हैं, घुलने मिलने में जो समय लगता है उसको आबाधा काल कहते हैं। इसके बाद क्षण क्षण में जिस तरह कोयलों का कुछ कुछ भाग जल-जल कर राख होता रहता है उसी तरह कर्मों का भी एक-एक भाग क्षण क्षण में झड़ता रहता है, इसही को कर्मों की निर्जरा होते रहना कहते हैं।

अंगोठी पर कोई चीज़ पकाने को रखी हो, या न रखी हो तो भी अंगोठी के कोयलों का थोड़ा थोड़ा हिस्सा जल जलकर राख ज़रूर होता रहेगा। इस ही प्रकार कर्मों को भी अपना भला बुरा फल देने के वास्ते कोई निमित्त मिले या न मिले तो भी क्षण क्षण में उनका एक एक हिस्सा ज़रूर झड़ता रहेगा। फल देने योग्य कोई निमित्त नहीं मिलेगा तो बिना फल दिये ही अर्थात् बिना उदय में आये ही उस हिस्से की निर्जरा होती रहेगी। जिस कर्म की जो स्थिति बंधी होगी अर्थात् जितने काल तक किसी कर्म के कायम रहने की मर्यादा होगी उतने काल तक बराबर उस कर्म के एक एक हिस्से की निर्जरा क्षण क्षण में ज़रूर होती रहेगी।

परन्तु जिस प्रकार अंगीठी में मिट्टी का तेल पड़ जाने से वा तेज़ हवा के लगने से अंगीठी के कोयले एकदम ही भबक उठते हैं, जिससे कोयलों का बहुत सा हिस्सा एकदम जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार किसी भारी निमित्त कारण के मिलने पर कर्मों का भी बहुत बड़ा हिस्सा एकदम भड़क उठता है, कर्मों का जो हिस्सा बहुत देर में उदय में आना था, वह भी उसी दम उदय में आ जाता है। इस ही को उदीरणा कहते हैं।

कर्मों का कोई हिस्सा बिना फल दिए भी कैसे भड़ता रहता है, इसको समझने के लिये यह जानना चाहिए कि, साता और असाता अर्थात् सुख देने वाला और दुख देने वाला ये दोनों कर्म एक साथ फल नहीं दे सकते हैं। जिस समय साता का उदय होगा उस समय असाता कर्म बेकार रहेगा और जिस समय असाता का उदय होगा उस समय साता कर्म बेकार रहेगा। परन्तु कर्मों का एक एक हिस्सा तो क्षण क्षण में ज़रूर ही भड़ता रहता है, इस कारण सुख का निमित्त मिलने पर जिस समय साता कर्म फल दे रहा होगा उस समय असाता कर्म बिना फल दिये ही भड़ता रहेगा और जब दुख का निमित्त कारण मिलने पर असाता कर्म फल दे रहा होगा उस समय साता कर्म बिना फल दिए ही भड़ता रहेगा। दोनों कर्म जब एक साथ काम नहीं कर सकते हैं तब एक कर्म को तो ज़रूर ही बेकार रहकर भड़ना पड़ेगा। इस ही तरह रति और अरति अर्थात् प्यार और तिरस्कार हास्य और शोक अर्थात् खुशी और रंज दोनों एक साथ फल नहीं दे सकते हैं—एक समय में एक ही कर्म फल देगा और दूसरे को बिना फल दिये ही भड़ना पड़ेगा। निद्रा कर्म को देखिये कायदे के बमूजिब उसका भी एक एक हिस्सा क्षण क्षण में भड़ता रहता है, परन्तु जब तक

हम सोते हैं तब तक तो बेशक निद्रा कर्म अपना फल देकर ही झड़ता है, लेकिन जितने समय तक हम जागते हैं, उतने समय तक तो निद्रा कर्म को बेकार ही झड़ता रहना पड़ता है। इस ही प्रकार अन्य भी अनेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय कर्म को अपना फल देने का निमित्त मिलता है वह कर्म तो उस समय फल देकर ही खिरता है बाकी जिन कर्मों को निमित्त नहीं मिलता है वे सब बिना फल दिये ही खिरते रहते हैं।

भगवती आराधनासार को संस्कृत टीका में श्री अपराजितसूरि ने गाथा १७५४ के नीचे स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'कर्म' उपादान हैं जिनको अपना फल देने के वास्ते द्रव्य क्षेत्र आदि निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार आमका बीज मिट्टी पानी और हवा आदि का निमित्त पाकर ही वृक्ष बनता है और फल देता है, बिना निमित्त मिले हमारे बक्स में रक्खा हुआ वैसे ही बोदा होकर निकम्मा हो जाता है। इस ही प्रकार कर्म भी बिना निमित्त मिले कुछ भी फल नहीं दे सकते हैं, यूँही व्यर्थ ही झड़ जाते हैं। इस ही प्रकार गाथा १२२६ में नीचे लिखा है कि जब द्रव्य क्षेत्र, काल आदि मिलते हैं तब ही कर्म अपना फल आत्मा को देते हैं।' ऐसा ही गाथा १७४० के नीचे लिखा है। ऐसा ही मूलाराधना टीका में गाथा १७११ के नीचे लिखा है कि द्रव्य क्षेत्र आदि के आश्रय से कर्म का योग्यकाल में आत्मा को फल मिलना कर्म वा उदय होना कहलाता है।

वास्तव में निमित्त कारण ही बलवान है, इसी से महामुनि गृहस्थाश्रम को छोड़ आबादी से दूर जंगल में चले जाते हैं। गृहस्थियों की आबादी में स्त्री पुरुषों के समूह में रागद्वेष और विषय कषाय का ही बाज़ार गरम

रहता है, हर तरफ़ उन्हीं का खेल देखने में आता है और उन्हीं की चर्चा रहती है। ऐसे लोगों के बीच में रह कर परिणामों का शुद्ध रहना—किंचित मात्र भी विचलित न होना—एक प्रकार असम्भव ही है, इसी कारण आत्म-कल्याण के इच्छुक महामुनि विषय कषाय उत्पन्न करने वाले निमित्त कारणों से बचने के वास्ते आबादी से दूर चले जाते हैं। उनके चले जाने पर आबादी उजड़ नहीं जाता, किन्तु वैसी ही बनी रहती है जैसा कि पहले थी। इससे साफ़ सिद्ध है कि यह आबादी उनके कर्मों की बनाई हुई नहीं थी, किन्तु उनके वास्ते निमित्त कारण ज़रूर थी, तब ही वे उसको छोड़ सकें। उनके कर्मों की बनाई हुई होती तो उनके साथ जाती; क्योंकि जिन कर्मों ने उनके वास्ते आबादी का सामान बनाया हो, वे कर्म तो अभी उनके नाश नहीं हुए हैं, ज्यों के त्यों मौजूद हैं।

इस ही प्रकार बस्ती छोड़ कर जिस वन में जाकर वे रहते हैं, वहां भी शेर, भेड़िया आदिक पशु और डांस मच्छर आदि कीड़े-मकौड़े सब पहले से ही बास करते हैं और इन मुनियों के दूसरे वन में चले जाने पर भी उसी तरह बास करते रहेंगे। वन से आये हुये इन मुनियों को परिषह देने के वास्ते उनके कर्मों ने इनको पैदा नहीं कर दिया है। हां! मुनियों के यहां आने पर उनको परिषह पहुँचाने के निमित्त कारण वे ज़रूर बन गये हैं। दिन को कड़ी धूप का पड़ना, रात को ठंडी हवा का चलना, बारिश का बरसना, बरफ़ का पड़ना आदि भी जो कुछ अब हो रहा है वही इन मुनियों के आने से पहले भी होता था और जब ये मुनि दूसरे वन को चले जायेंगे तब भी होता रहेगा। इससे स्पष्ट सिद्ध है परिषह का यह सब सामान भी, मुनियों के कर्मों ने नहीं बनाया है किन्तु उनके यहां आने पर उनके

वास्ते निमित्त कारण जरूर होगया है । जो सच्चे मुनि होते हैं वे इन सब परिषहों को समभाव के साथ सहन करते हैं किंचित् मात्र भी दुख अपने मन में नहीं लाते हैं, न अपने ध्यान से ही विचलित होते हैं । यदि पापी मनुष्य भी उनको दुख देते हैं, अपमान करते हैं वा अन्य प्रकार पीड़ा पहुँचाते हैं तो भी वे कुछ खयाल नहीं करते हैं, क्रोध और मान आदि कर्मों को किंचित् मात्र भी उभरने नहीं देते हैं, अपने महान पुरुषार्थ से उनको दबाये ही रखते हैं, दबाये ही नहीं, किन्तु सभी प्रकार की कषायों को, सारे ही राग-द्वेष को अथवा सारे ही मोहनीय कर्म को जड़-मूल से नाश करने के ही यत्न में लगे रहते हैं । इस ही कारण वे धम्य हैं और पूजने योग्य हैं ।

छोटे निमित्तों से बचे रहने के वास्ते मुनि विषय कषायों से भरी हुई बस्ती को छोड़कर जंगल में हो नहीं चले जाते हैं बल्कि मुनियों के संघ में रहते हैं, जहां ज्ञान वैराग्य के सिवाय अन्य कोई बात हो नहीं होगी है । जहां आचार्य महाराज उनकी पूरी निगरानी रख कर उन्हें विचलित होने से बचाते रहते हैं ।

गृहस्थियों का महान पुरुषार्थ

परन्तु गृहस्थियों का मामला बड़ा टेढ़ा है, उनका काम विषय-कषायों से एकदम मुंह मोड़ना नहीं, उनको बिल्कुल ही दबा देना वा छोड़ बैठना नहीं, किन्तु उनको अपने आधीन चलाने का ही होता है । उनका यह काम काले नाग खिलाने के समान है, इसी से बहुत ही कठिन और बहुत ही नाज़ुक है । मुनि तो विषय कषायों को ज़हरीले साँप मान कर उनसे दूर भागते हैं, दूर भागकर उनको पास तक भी नहीं आने देते हैं, परन्तु गृहस्थी स्वयं विषय कषायों का पालते हैं, अर्थात् विषय भोग भी करते हैं और क्रोध-मान-माया-लाभ आदि

सभी प्रकार की कषायों भी करते हैं। सच पूछिये तो यह कषाय ही तो गृहस्थी के हथियार होते हैं। जिनके सहारे वे अपना गृहस्थ चलाते हैं, अपने गृहस्थ के योग्य सब प्रकार की सामग्री जुटाते हैं और जुटी हुई सामग्री को रक्षा करते हैं। परन्तु ये विषय कषाय काले नाग के समान अत्यन्त ज़हरीली और केहरिसिंह की तरह महा भयानक तथा खून की प्यासी होती हैं, जिनको वश में रखना और अपने अनुसार चलाना कोई आसान बात नहीं है। इसके लिये बड़ी होशियारी, बड़ी भारी हिम्मत, बड़ा दिलगुर्दा और बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। इस ही कारण ये काम वे ही कर सकते हैं जो महान् साहसी और पूर्ण पुरुषार्थी होते हैं। ज़रा चूके और मारे गये, ज़रा भी किसी ने असावधानी की और ज़हरीले साँपों ने उसको आ दबाँचा; फिर भी विषय-कषायों का ज़हर चढ़कर वह ऐसा बेहोश वा उन्मत्त हो जाता है कि अपने भले बुरे की कुछ भी सुधि नहीं रहती, फिर तो विषय कषायों में फँसकर वह आप ही अपनी ऐसी दुर्गति बना लेता है, होली का भड़वा बनकर अपने ही हाथों ऐसा ज़लील और ख़वार होता है, ऐसे २ महान् दुख भोगकर मरता है कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है और मरकर भी सीधा नरक में ही जाकर दम लेता है। इस कारण इस लेख में पुरुषार्थ पर इतना जोर दिया गया है कि जिसके भरोसे गृहस्थी लोग कर्मों को निर्बल मानकर उनके उदय में पैदा हुई विषय कषायों की भड़क को काबू कर अपने अनुकूल चलाने का साहम कर सकें, गृहस्थ-जीवन को उत्तमता से चलाकर आगे को भी शुभगति पावें—कर्मों के उदय से डरकर, हाथ पैर फुलाकर अपने हिम्मत, साहस और पुरुषार्थ को न छोड़ बैठें, डरे सो मरे यही बात हर वक्त ध्यान में रखें।

अगर किसी मुसाफ़िर को किसी बहुत ही दंगई घोड़े पर सवार होकर सफ़र करना पड़ जाय और उसके मन में यह बैठ जाय कि इस घोड़े पर मेरा कोई वश नहीं चल सकता है, ऐसा विचार कर वह घोड़े को बाग़ डीली छोड़ दे, तो आप ही समझ सकते हैं कि फिर उस

मुसाफिर की ख़ैर कहाँ ? वह बे-लगाम घोड़ा तो उल्टा सीधा भागकर मुसाफिर की हड्डी पसली तोड़कर ही दम लेगा । यही हाल गृहस्थी का है, जिसको महा उद्धत विषय-कषायों को भोगते हुए भी अपना गृहस्थ-जीवन व्यतीत करना होता है । वह भी अगर यह मानले कि जो कुछ होगा वह मेरे कर्मों का ही किया होगा, मेरे किये कुछ न हो सकेगा और ऐसा विचारकर वह अपने विषय-कषायों की बागडोर को बिल्कुल ही ढीली छोड़कर उनको उनके अनुसार ही चलने दे तो उसके तबाह होने में क्या किसी प्रकार का शक या शुबाह हो सकता है ? गृहस्थी तो कुशल से तब ही रह सकती है जब अपने पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा करके विषय कषायों की बागडोर को सावधानी के साथ थामकर उनको अपने अनुकूल ही चलाता रहे । यही उसका सद्गृहस्थीपन है, नहीं तो वह नीचातिनीच मनुष्य ही नहीं, किन्तु भयंकर राक्षस तथा हिंसक पशु बनकर अथवा विष्टा के कीड़े के समान गन्दगी में ही पड़ा रहकर अपना जन्म पूरा करेगा और मरकर नरक ही जायेगा । कर्मों को बलवान मानकर उनके आधीन हो जाने का यही तो एकमात्र कुफल है ।

असल में पुरुषार्थ से ही मनुष्य का जीवन है और इसी से उसका मनुष्यत्व है । गृहस्थी का मुख्यकार्य कर्मों से उत्पन्न हुए महा उद्धत विषय-कषायों को पुरुषार्थ के बल से अपने रूप चलाने का ही तो है, और इस कार्य के लिए उसमें सामर्थ्य भी है । अपनी सामर्थ्य के बल पर वह तो इससे भी अधिक ऐसा ऐसा अद्भुत और चमत्कारी पुरुषार्थ कर दिखा रहा है कि स्वर्गों के देवों की बुद्धि भी जिसको देखकर अचम्भा करने लग जाती है । देखो यह पाँच फ़िट का छोटा सा मनुष्य ही तो आग, पानी, हवा, बिजली आदि सृष्टि के भयंकर पदार्थों को वश करके उनसे अपनी इच्छानुसार सर्वप्रकार की सेवायें लेने लग गया है, आग, पानी से भाप बनाकर उससे आटा पिसवाता है, लकड़ी चिरवाता है, पत्थर फुड़वाता है, हजारों मनुष्य और लाखों मन बोझ लादकर रेलगाड़ी खिंचवाता है—खिंचवाता ही नहीं, हवा के समान तेज़ी से भगाता है । क्या कोई भयंकर से भयंकर राक्षस ऐसा

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय

है कि जो पुरुषार्थ करते हैं वे मालिक बनते हैं और जो पुरुषार्थ
होकर अपने कर्मों के ही भरोसे बैठे रहते हैं वे गुलाम बन जाते हैं
पशुओं के समान समझे जाते हैं ।

एक बात और भी कह देने की है और वह यह कि मनुष्यों
की वस्ती में चोर, डाकू, जालिम, हत्यारे, राक्षस लोभी, मानी विषयी
सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं, मांस शराब व्यभिचार आदिक सभी
प्रकार के कुव्यसनों की दुकानें लगी रहती हैं, और चारों तरफ विषय
कपायों में फंसने के ही प्रलोभन नज़र आते हैं । मुनि महाराज तो
ऐसे भयंकर संयोग में अपने परिणामों को संभाले रखना अपनी सामर्थ्य
से बाहर समझ वस्ती को छोड़ बन को चले जाते हैं, परन्तु
सद्गृहस्थ बेचारा कहा चला जाय ? उसको तो इन सब प्रकार के
दुष्ट मनुष्यों और खोटे प्रलोभनों में ही रहना होता है । इन ही के
बीच में वह इस प्रकार रहता है जैसे पानों में कमल । इस कारण
सद्गृहस्थ का पुरुषार्थ मुनियों के पुरुषार्थ से भी कहीं अधिक प्रशंसनीय
और बलवान् है, जिससे पुरुषार्थ की महान् सामर्थ्य का पूरा पूरा
अन्दाज़ा हो जाता है । धन्य है वे सद्गृहस्थ जो इस पुरुषार्थ का
सहारा लेकर कर्मों का भी मुकाबला करते हैं और निमित्त कारणों
का भी अपने ऊपर काबू नहीं चलने देते हैं, कायर और अकर्मण्य
बनकर इस प्रकार नहीं लुढ़कते फिरते हैं, जैसे पत्थर वा लकड़ी के
टुकड़े नदी के भारी बहाव में बहते और लुढ़कते फिरा करते हैं ।

हमारी भी यही भावना है कि हम लकड़ी पत्थर की तरह
निर्जीव न बनकर पुरुषार्थी बनें और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक
कर दिखावें ।

“बहुत रलो संसार में, वश प्रमाद के हों
अब इन तज उद्यम करी, जातैं सब सुख होय
“भाग्य भरोसे जे रहैं, ते पाछे पछताय ।
काम बिगाड़ें आपनो, जग में होत हंसाय ॥”

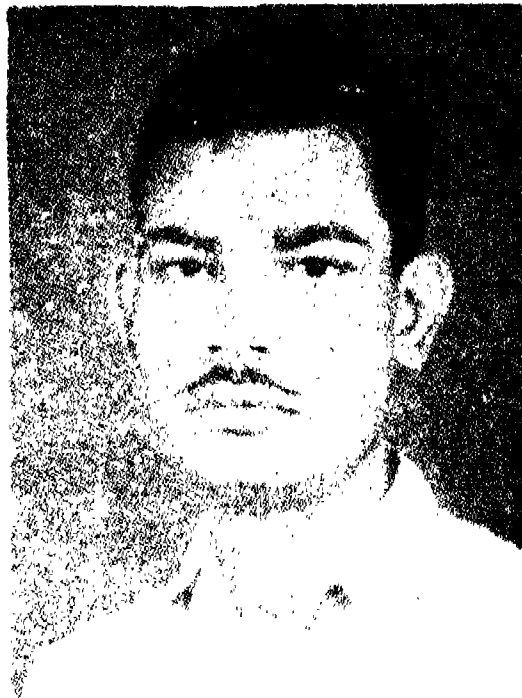


श्री महावीराय नमः

ॐ

भजन-पीयूष

प्रथम पुष्प



रचयिता व प्रकाशकः—

कपूरचन्द वरैया बी० ए०

प्रथम संस्करण
१०००

}

विक्रमी
संवत्
२००६

{

मूल्य
४ आने

वीर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम संख्या

काल नं०

स्थान

[प] यह मेरी दूसरी
अत्यन्त हर्ष का
हुसको मैं अत्यन्त
कोई ऐसा सुयोग
चातुर्मास जब
का निश्चय कर
हैं ।

है जिसमें अन्त
का एक पद श्रीयुत लाला रतन लाल जी मादोपुरिया रईस देहली
की धर्म पत्नी का है । इन भजनों को मैंने विद्यार्थी जीवन में
समय समय पर निर्माण किया है । सच पूछा जाय तो मैं यह
रचना अपनी विद्यार्थी जीवन की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए
ही प्रकाशित करवा रहा हूं । एक विद्यार्थी से भूलों का हो जाना
स्वाभाविक है । अतः पाठकों से क्षमा याचना है । इस रचना
से समाज का किञ्चित भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रम को
सफल समझूंगा ।

एक विद्यार्थी
कपूरचन्द वरैया बी. ए.

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दोहा—घाति कर्म रिपु नाश करि पायो केवल ज्ञान ।
नमूँ सकल परमात्मा शिव पुर वास करान ॥

भजन नं० १

देव तो जिनेन्द्र देव अवर नाँहि कोई ।
अष्टादश दोष विगत सकल निकल दोई ।
वीतराग ज्ञान-धन, लोक शिपर चूड़ामन ।
तारन-तरन हरन पीर कहै बोई ।
तन नगन बन बसन, मगन स्वरूपाचरन ।
मदन दहन चाह चह न बहै गुरु होई ।
कही जहां दया करन, वचन सबन सुख करन ।
निखिल भ्रम दूर करन सही धरम सोई ।
तीन रतन जग में सार, शिवस्वरूप सुखकार ।
नमैं 'कपूर' बार बार, तारो अब मोई ।

भजन नं० २

धनि-धनि समुद विजय नंदन को ,
 बने वर त्रिभुवन मन मोहन को ।
 श्याम वरन तन राजिव-लोचन ,
 भाल तिलक सुरभित चन्दन को ।
 अतुल रूप लखि लाजै रवि शशि ,
 धाए सुर नर छवि निरषन को ।
 छप्पन कोटि जदों संग लीने ,
 हरि-हलधर आदिक बहु जन को ।
 कंचन रथ आरूढ़ भए प्रभु ,
 चले राजुलजी के व्याहन को ।
 पथ में चले जात सहसा इक ,
 करुण पुकार गई श्रवणन को ।
 ठहर सारथी बढ़ न नेकु अब ,
 निरखि लेन दै इन पशुअन को ।
 उर से करुणां-श्रोत बह्यो तब ,
 खिरक खुलाय दियो जीवन को ।
 रथ तोरण से मोड़ लियो भट्ट ,

(३)

विरति जगत से होगई मन को ।
छोड़ि बिलखती सती राजमति ,
मातु-पितन अरू नर नारिन को ।
जाय चढ़े गिरनार शिखर पर ,
वरन हेतु इक मुक्ति-रमन को ।
घातिया घाति उपायो केवल ,
लोकऽलोक के अवलोकन को ।
दिव्य निरक्षर धुनि प्रगटी जहाँ ,
भवदधि पार करन भविजन को ।
निज तिथि अल्प जानि ध्यानासन ,
हुए अघाति करम नाशन को ।
अजर अमर अक्षय अनंत हैवै ,
'कपूर'नमत तिन पद युगलन को ।

भजन नं० ३

नमूँ नमूँ पार्वनाथ जिन चंद ॥ टेक ॥
नगर बनारसि बामा जननी अश्वसेन नृप नंद ।
नाग जुगल पल माँहि उबारे ऐसे आनंद कंद ।
शिव श्री रञ्जन, पंचानन सम कमठ जु मान गयंद ।
द्वै कर जोर 'कपूर' वीनवै मैटो भव दुख द्वन्द ।

—:०:—

भजन नं० ४

श्री महावीर की वीतराग छवि समवसरन सोहै ।
कंचन वरन सप्त त्वंग तन सुर गण मन मोहै ।
माता त्रिशला सिद्धारथ पितु कुण्डलपुर जन्म्यो है ।
सहस अठोत्तर कलशन सौं पांडुकवन न्हवन हुआ है ।
आयु बहत्तर पाय तीस लौं जती विरत पालो है ।
शेष वियालीस वरष जान तप करन हियो उमगो है ।
प्रथमऽहार पुर कूल कूल नृप निरन्तराय दियो है ।
द्वादश वरष हरष सौं दुद्धर तपश्चरण आचरो है ।
ग्राम जृम्भिका ऋजुकूला सर तट ध्यानारूढो है ।
केवल ज्ञान उपाय तत्क्षण द्वादश सदस लहो है ।

छासठि वासर विरी न वाणी शक्रावधि जानो है ।
 गौतम विप्र समीप जाय इक श्लोक अर्थ पूछ्यो है ।
 जान्यो अर्थ नहीं जबही प्रभू निकट स्वयं आयो है ।
 गल्यो मान दर्शन सौं तबही मन मयूर नाचो है ।
 सप्त-भंगी वाणी प्रकटी भविजन मन आनंदो है ।
 धनिधनि सन्मति वर्धमान अतिवीर वीर तो है ।
 पावापुर बन पडगासन शिव कामिन तकि जो है ।
 कपूर् कहै त्रैलोक्यनाथ अब तुम सम अरु को है ॥

—:०:—

भजन नं० ५

जिनवाणी बंदों मन बच
 काय सम्हारिकै ॥टेका॥
 तीर्थकर मुख से प्रकट,
 भविजन मन सुखदाय ।
 गणधर गूँथे द्वादशांग में,
 लोकालोक लखाय ॥१॥
 सप्त तत्व षट् द्रव्य जिहँ,

(६)

नय निक्षेप प्रमाण ।

स्यात् अस्ति नास्ति अवक्त्व,
सप्त भंग जुत जान ॥२॥

मोह महा-तम पुञ्ज कूँ,
ज्ञान-भान अवदात ।

अवलोकत ही मंगल उपजै,
संचित दुरित नसात ॥३॥

शिव मग सुगम सोपान है,
मुनिगण सेव करंत ।

जगदम्बे करपूर थुति करै,
तुरत होय भव अन्त ॥४॥

—:०:—

भजन नं० ६

भव तारण-तरण कृपानिधान,
महावीर तिहारी जय होवै ।

सिद्धार्थ नृप राजदुलारे,
त्रिशलावति के प्राण पियारे ।

भक्त जनन के रखवारे,

(७)

महावीर तिहारी जय होवै ॥१॥

आर्यावर्त अवतार लिया है,

मिथ्या तम का नाश किया है ।

सम्यक् ज्ञान प्रकाश किया,

महावीर तिहारी जय होवै ॥२॥

हिंसा खप्पर लेकर आई,

त्राहि त्राहि ख नभ में छाई ।

धर्म ध्वजा फिर फहरादी,

महावीर तिहारी जय होवै ॥३॥

काल बली ने आके पकड़ा,

माया ने लूटा पाप ने जकड़ा ।

सेवक का उद्धार करो,

महावीर तिहारी जय होवै ॥४॥

—:०:—

भजन नं० ७

गाओ भाई प्रभु गुण नित प्रति गाव ॥टेक॥

बीतराग विज्ञान सुधा चष,

विषय कषाय हटाव ॥१॥

(८)

शास्त्र श्रवण साधर्मि संगत,

चव आराधन ध्याव ॥२॥

दान सुपात्रनि द्रव्य भावविधि,

पूज रचो धरि चाव ॥३॥

कपूर सुफल होय नर भव जासे,

मत चूकै यह दाव ॥४॥

—:०:—

भजन नं० ८

तेरो आतमराम कूँ ध्याय बिना,

यूँ ही जीवन निष्फल जाय ।

यूँ ही जीवन निष्फल जाय,

दुवारा फिर नहीं मिलि है आय ॥५॥

बड़े भाग्य से मिली तोहि,

यह दुद्धर नर की काय ।

चिन्तामणि को पाय सयाने,

तैं खोवत काग उड़ाय ॥६॥

नदी नाव संयोग मिल्यो,

(६)

यह बहुमत विलंब लगाय ।

कुरंग नाभि कस्तूरि बसत,

त्योँ परमात्म घट माय ॥२॥

सकल जगत स्वारथ को चाहत,

स्वारथ तोहि न भाय ।

स्वारथ समुझि निरखि निज गुण,

पर द्रव्य सूँ नेह हटाय ॥३॥

आप आप को शरण आप ही,

कोई कहीं न सहाय ।

चेत चेत चेतन चितार चित,

चिदानन्द चिदराय ॥४॥

राग दोष तज प्रभु नाम भज,

शुद्ध त्रियोग मिलाय ।

कपूरचन्द्र पी निज अनुभव रस,

यही शिव सुगम उपाय ॥५॥

भजन नं० ६

क्या करूँ भगवान् अब तो,
दुख सहा जाता नहीं ।
पड़ी विपति जब आन,
कोई पास में आता नहीं ॥१॥

सब कुटुम्ब स्वार्थ सगा है,
अन्त में देते दगा हैं ।
जानता जो यदि कभी,
इनको मैं अपनाता नहीं ॥२॥

चौकड़ी घेरे घड़ी है,
कर्म बेड़ी पग पड़ी है ।
चहुँ ओर तम अज्ञान में,
मुक्ति का पथ पाता नहीं ॥३॥

इत का रहा न उत का रहा,
बीच में लटका रहा ।
इक आसरा तेरा बचा,
कुछ और दिखलाता नहीं ॥४॥

दिन तो बिषयन में गँमाए,

(११)

जैसे आए वैसे धाए ।

तुम्हरे गुण जो कपूर गाता,

भव में भरमाता नहीं ॥५॥

—:~:—

भजन नं० १०

जाऊं जाऊं जी महावीरा,

तुम पर वारना जी ॥टेक॥

समवशरण विच आप विराजो,

शिव कामिन वर दूलह साजो ।

कोटि दिवाकर लाजो,

अतुल छवि धारना जी ॥१॥

ध्यान अनल में कर्म जलायो,

शुद्धात्म अनुभव रस पायो ।

मुक्ति-मार्ग प्रकटायो,

भवि हित कारना जी ॥२॥

सुर नर नारी पूजन आवै,

बार बार भुवि भाल नवावै ।

सची सचीपति गावै,
मंगल चारना जी ॥३॥
अंचन चोर आदि बहु तारे,
व्याल भील गज स्वान उबारे ।
स्वामी मुझे भी भव दधि,
पार उतारना जी ॥४॥

-----:०:-----

भजन नं० ११

प्रभु याद तेरी हमसे भुलाई नहीं जाती ।
छवि शांति वीतराग की आंखों में समाती ॥१॥
अविरुद्ध शुद्ध बुद्ध सुखद शुद्ध सुपद हैं ।
दिगम्बर स्वरूप अनूप रूप सर्वदा भाती ॥२॥
रजनी दिवस हो चाहे घंटा घड़ी या पल ।
दर्शन बिना तिहारें नहीं चैन हमें आती ॥३॥
दिल चाहता है स्वामी निरखा सदा करूँ मैं ।
त्रैलोक्य की सुख संपत्ति अब नाहिं सुहाती ॥४॥
महाराज महावीर दर्शन दो दास को तुम ।
इच्छा जो फकत दर्श की हर बार सताती ॥५॥

(१३)

भजन नं० १२

प्रभुजी सुनलो - इतनी टेर ॥टेक॥
दीन दयाल जगत की सुनते मेरी बार क्यों देर ।
पुण्यपाप पग बेड़ी पटकी बंद कियो तन जेर ।
निरपराध हौं पर संग करि कै भुगती विपति घनेर ॥१॥
वीतराग आनंदन लखि तुम आयो शरण दिलेर ।
दया धार चित लाज रखो अब मुझ दुखिया तन हेर ॥२॥
अन्य कोऊ मत जानहुँ मोकूँ अपनो ही जानो चेर ।
चंद कपूर विकट भव बन में भ्रमूँ न अब की बेर ॥३॥

—:०:—

भजन नं० १३

व्याहन कारन नेम कुमार,
गए नृप उग्र सेन के द्वार ॥टेक॥
छप्पन कोड़ जादवो संग,
रथ प्यादे गज वलध तुरंग ।
हरी हलधर भी जाकी लार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥१॥
कनक रथ पर आरूढ़ जिनंद,

अतुल छवि लार्जे रवि अरू चंद ।
दरश लखि लजौ मदन मद छाग,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥२॥
इत उत चितवत दृष्टि पसार
श्रवण सुन पशुअन की किलकार
सारथी ठहर बड़ो न अगार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥३॥
रथ तोरण से मोड़ लियो है,
मन वैराग्य असीम भयो है ।
लखो सब कदलीवत् संसार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥४॥
तजी सती राजमती सी नारि,
चढ़े जहां भव्य शिपर गिरनार ।
हुवे वहां मुकित-बधू भरतार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥५॥
प्रभू तुम बाल ब्रह्मचारी,
चराचर वस्तु लखो सारी ।
'कपूर' भी लहे भवार्णव पार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥६॥

भजन नं० १४

जान जिय प्रभु गुण अपरंपार ॥टेका॥
इन्द्र नरेन्द्र खगेन्द्र फणपति,
कोई न पावत पार ।
चार ज्ञान के धारी मुनि हूँ,
कहत बैठ गए हार ॥१॥
ज्ञानोदधि के अंजुलि जल से,
रचे सकल भंडार ।
को वर्णन करि ह्वै विरूदावलि,
अगम अगोचर सार ॥२॥
जो हट करै वरवान नहीं कोई,
वा सम निपट गँवार ।
स्वांति बूँद चातक कपूर ज्यों,
स्वामी तू ही आधार ॥३॥

भजन नं० १५

मेरी सुधि लीजो जी जिनराई ॥टेक॥

या जग जाल में भटक्यो प्रभुजी,

दर दर टोकर खाँई ।

तेरो शरणो ऐसो जिनजी,

भव पातक टर जाई । १॥

काल अनादि गँवायो स्वामी,

भ्रम्यो चतुर्गति माहीं ।

तुम विन मेरो जगतपतीजी,

और यहाँ कोऊ नाहीं ॥ २॥

भवसागर में नौका म्हारी,

तुम हो मेरे सहाई ।

कपूर कहै कर जोर जिनेशी,

तुम ही पार लगाई ॥ ३॥

(१७)

भजन नं० १६

भगवान महावीर मोरी भौंपड़ी आना,
उजड़ी हुई बस्ती को पुनः आके बसाना ॥१॥
दीपक में नहीं तेल नहीं तेल में बाती,
घने अन्धकार में कहीं मग भूल न जाना ॥२॥
दिलावर को दिया दिल था ज्यादा न सताना,
निज भक्ति के रस-कुण्ड में मस्ताना बनाना ॥३॥
क्या करूँ कहाँ जाऊँ शरण छोड़ आपकी,
भ्रमते हुए इस दास को टुक धीर बँधाना ॥४॥
आशा अमर है जाना माना यह सबका कहना,
दिलासा दिलाके स्वामी निराशा न दिलाना ॥५॥
जर्जर पड़ी यह नवका मँझधार डूबती,
हस्तालम्ब दे कै तुरत पार लगाना ॥६॥

भजन नं० १७

वीर जिनराज भव दधि से मुझे भी पार कर देना ।
 प्रभू चरणों पड़ा तेरे शरण अपनी में ले लेना ॥१॥
 सती सीता को अग्नि कुंड से तुमने बचाया था ।
 कौरवदल के माँही द्रोपदी का चीर बढ़ाया था ।
 जनम दुखिया समुक्ति करिकै दया की दृष्टि कर देना । २ ।
 सुदर्शन सेठ को शूली से सिंहासन बिठा दीना ।
 राय श्रीपाल को भी सिंधु से भट पार तुम कीना ।
 क्यों मेरी बार देरी है श्रीपति लाज रख लेना ॥३॥
 तुम्हारी शरण जो आया न भव वन में वो भरमाया ।
 हटाया मोह का फंदा अन्त में मुक्ति पद पाया ।
 कहत कर्पूर कर जोरै दास की अर्ज सुन लेना ॥४॥

— — १० — —

भजन नं० १८

महावीर को भेष दिगम्बर भवि जन मन में ल्याते हैं ।
 वो शांति छवि पद्मासन माँड़े आतम ध्यान जु ध्याते हैं ॥१॥
 वे परब्रह्म परमात्म पूरन परमपिता कहलाते हैं ।

(१६)

जे ऐसे प्रभु को ध्यावै वे निश्चय ही मुक्ति पद पाते हैं ।२।

जनम मरण के भय से जो नर शरण प्रभु की आते हैं ।

वे अनायास विनु उद्यम के संसार सिंधु तिर जाते हैं ।३।

इन्द्र नरेन्द्र मुनेन्द्र आदि सब भगवन के गुण गाते हैं ।

कपूचंद्र ऐसे जिनेन्द्र के चरणों शीश नमाते हैं ।४।

—:०:—

भजन नं० १६

बीतराग महावीर प्रभो मोय पार लगैया तुम ही तो हो ।टेक।

बड़े कठिन से नर तन पाया विषयन माँही व्यर्थ गमाया ।

नहीं मैंने तेरा गुण गाया धीर बंधैया तुम ही तो हो ।१।

मातपिता सुत बन्धु संवाती सकल जगत स्वारथ का नाती ।

कोई नहीं है मेरा साथी साथ दिवैया तुम ही तो हो ।२।

कर्मों ने मुझको भरमाया तिहूँ लोक सुख चैन ना पाया ।

कपूर तुम्हीं को शीश नमाया बंध छुड़ैया तुम ही तो हो ।३।

—:०:—

(२०)

भजन नं० २०

सद्गुरु चेतावनि देवत है चेतन क्यों नहि तैं चेतत हैं । टेक।
थे सुर लोक में जब तुम लगी यह भावना कब से ।
मानुष तन को पावै कब अरु होवै पार उस भव से ॥१॥
या जग में आय कर मोही मोह की नींद सोता हैं ।
यह दुर्लभ पाय कर नर तन जनम तैं व्यर्थ खोता हैं ॥२॥
कहीं भी सुख नहीं जग में यह भूँटी मोह माया है ।
अन्त पछिताएगा भाई यही श्रुत में जनाया हैं ॥३॥
इसी से जान कर सत्वर भजन कर परम आत्म का ।
वही अब पार कर देंगे जो पड़ी मँझधार में नवका ॥४॥

—:०:—

भजन नं० २१

चेतन महावीर मुख बोल, बोल बोल नित बोल ।
भन को बाँट विवेक तुला से दुष्कृत सुकृत तोल ।
पाप बढ़त लखि पुण्य घटत भट घट के पट कूँ खोल ॥१॥
मोह नींद से जग जा पंथी राह पड़ी है गोल ।
दया धरम उर गाख निरन्तर जी चाहै तहाँ डोल ॥२॥

(२१)

जाके सुमरित पाप कटत है प्रभु नाम अनमोल ।
कहै कपूर सुनो भवि जीवो पीव सुधा रस घोल ॥३॥

—:०:—

भजन नं० २२

महावीर स्वामी हम तो दरशन करन को आए ।
तेरे द्वार पै पड़े हैं मुक्ति की सुरत लगाए ॥१॥
तुम दानवीर भारी सुनकर विरद तिहारी ।
हम भक्ति के भिकारी भोरी पंसारे लाए ॥२॥
अभिलाषा नहीं धन की आशा नहीं सुख तन की ।
चिन्ता है मगर मन की चरणों से हट न पाए ॥३॥
तुम बीतगग भगवन वसु कर्म-शैल चूरन ।
फिर नाथ कहो तुम बिन किसकी शरण में जाए ॥४॥
कपूर पर कृपा करो अब अर्ज प्रभु उर धरो ।
यह किंकर सामने खरो कर जोर शिर नमाए ॥५॥

—:०:—

(२२)

भजन नं० २३

जाग जाग अब जाग चेतन,
प्रभु चरणन चित लाग ॥टेक॥
ज्यों रतन सिंधु में कर तैं छूट्यौ,
कोई जतन निकाल्यो राम ।
त्यों इस नर तल को पकर क्यों तैं,
खोवतु है बिनु काम ॥१॥
मातृ कलत्र मित्र पुत्र अरू,
काम न आवत दाम ।
काल ने गाल में दाव लियो तब,
पड़ी रहे भी चाम ॥२॥
तू जग के मग में भूल्यो भटक्यो,
गाम न कोई ठाम ।
जानि जानि मन आनि यह निहचय,
मुक्ति तिहारो धाम ॥३॥
समय को जावत बार न आवत,
बीतत जातत जाम ।
रजनी से होय दिवस दिवस से,

(२३)

फिर होवत है शाम ॥४॥

वपन बीज तो करै नीम को,

खाय कहां से आम ।

कहूर कहैं जासे भजलो भाई,

महावीर को नाम ॥५॥

—:०:—

भजन नं० २४

एक जाचक तुमरे द्वारे,

लाया है भोरी पैसारे ।

रत्नत्रय भिक्षा पाने को,

आया शरण तिहारे ॥१॥

यह कर्म लुटेरे घेरे,

मोय चतुगति माँही प्रेरे ।

इन वश दुख पाए वनेरे,

अब कृपा दृष्टि करो प्यारे ॥२॥

मेंडक भक्ति वश आया,

स्वर्गों में सुर पद पाया ।

(२४)

अंजन से पापी तारे,
क्यों हरो न कष्ट हमारे ॥३॥

मैना का संकट टारा,
चमका अकलंक सितारा ।

हमरी भी लाज बचावो,
शरणागत के रखवारे ॥४॥

जग नायक सब विधि लायक,
भवि जन शिव पुर सुख दायक ।

तुम बिन मेरी को सुधि लै,
ऐ त्रिशलानन्द दुलारे ॥५॥

मैं अनादि काल से हूँवा,
पै कोई सहाई न हूँवा ।

कपूर हुजूर की तरणी,
भव दधि से करो किनारे ॥६॥

भजन नं० २५

आपु आपु को आप न समझ,

तातैं बहु दुख तैं पाया हैं ।

मरकट मूठी नहिं छाड़त है,

हर घर घर फिर भरमाया हैं ॥१॥

देह गेह में आपा जाना,

पंच पार संग लिपटाया हैं ।

विषयन मांही ऐसे मूवा,

ज्यों मृग मृगतृष्णा धाया हैं ॥२॥

लख चौरासी जोनि भटकता,

अनेक नाम तैं धरवाया हैं ।

नरक निगोद गमन को कागण,

यही मिथ्यात् वेद गाया हैं ॥३॥

यह मिथ्यात् महा दुखदायक,

हलाहल अधिक तैं बतलाया हैं ।

स्वर्गवास हूँ अति खोटो जो,

एकेन्द्रियादि में ले जाया हैं ॥३॥

सुख चाहे तो भेदज्ञान कर,

(२६)

आतम जुदा जुदा काया हैं ।

जिनशासन उर दृढ़ प्रतीत कर,

कपूर यही मन में भाया हैं ॥५॥

—:—:—

भजन नं० २६

मेरी दुविधा मिट गई तुम्हरे दरश को पाके ।

सब विषय कषाय पलाय सुपर रुचि लाके ॥

लो शिव पुर पायो गज आज हों जाके ।

मम हरष बढ़्यो ज्यों विकसै कुमुद चंदा के ॥

तुम विन वित जाऊँ रहूँ भरोसे काके ।

त्रिभुवन पति मन-मन्दिर में विराजो आके ॥

कपूर प्रेम-वश विवश कहैं शिर नाके ।

प्रभु करो कृपा जो न बिछुरे चरन कदै थांके ॥

—:—:—

भजन नं० २७

मेरी भी वेग हरो भव पीर ।

सीता पै जब विपति परी भयौ अग्निकुँड का नीर ।
कौग्बदल द्रोपदी पुकारी तुरत बढ़ायौ चीर ॥१॥
सती अंजना हती दुखारी कटी कष्ट जँजीर ।
दियो अहार भक्ति से चंदन भई कौदू की पीर ॥२॥
श्रीपाल कोटीभट के तन व्यापो कुष्ट गंभीर ।
नाम प्रताप हुवो मकरध्वज कंचन तुल्य शरीर ॥३॥
अधम उधारण विदित जगत में बीतराग महावीर ।
विरदपने की सुरत सम्हालो, करौ कपूर न ठीर ॥४॥

—:०:—

भजन नं० २८

जाग जाग तू जाग चेतन प्रभु चरणन चित लाग ॥टेक॥
बालपना खेलत खोय यौवन छिन छिन छीजत जात ।
अर्द्ध-मृतक सम वृद्धापन लखि ज्यौँ पतझड़ का पात ॥१॥
दिन सँ अन्तर रात होय अरू रात अनन्तर प्रात ।
ऐसे निश दिन जात जिया नहीं कुछ भी बनती बात ॥२॥

नर-तन उत्तम संगत जिनमत बार बार नहीं आत ।
 दुर्लभ अवसर पाय जे चूकैं हाथ मींजि पछितात ॥३॥
 जन्मै मरै अकेला भुगतै सुख दुख आप ही साथ ।
 तात मात किम् कथा न जावै सात धात का गात ॥४॥
 कल्प अनंत सहै दुख तऊ विष विषय खात न अघात ।
 पावक माँहि डारियत घृत बहु कैसे आग बुझात ॥५॥
 कहन सुनन से कछु न होय क्यों बीती बात भुलात ।
 निज हित हेत 'वपूर' कहै भज महावीर दिन रात ॥६॥

—:०:—

भजन नं० २८

चेतन ! तज माया दुखदाई भजले प्रभु नाम सुखदाई ॥टेक॥
 लग्न चौरासी जोनि भटकि कै या काया कूँ पावै ।
 चिन्तामणि हीरक सम क्यों तैं कौड़ी मोल बिकावै ॥१॥
 यह संसार सुपन का खेला निहचय मन में जान ।
 ज्ञान-चक्षु तू खोल सदानन्द आतम-ज्योति पिछान ॥२॥
 वय तेरी सब बीत चली अब चेत चेत अभिमानी ।
 बाल शीश पर भटक जायगा फिर क्या आनी जानी ॥३॥

भजन नं० २६

श्रीगुरु चेतावनि देवत है,

चेतन क्यों नहिं तैं चेतत हैं ॥टेक॥

पूरव पुण्य उपाय विना कहो कैसे नर-तन मिलता ।
बिनु बोए निफुगाए बिनु नहिं मित्रो तरुवर फलता ।१
ऐसो सुकृत जनित जैन कुल तुम पायो बड़ भाग ।
तू जाग यह अवसर फेरि नहि भट प्रभु चरणन चित लाग ।२
क्या धन कारण निश दिन भटकै उद्यम करै विशेषि ।
रत्नत्रय निधि तौ पै भाई ज्ञान जौहरी पेपि ॥३॥
विषय अंध मति मंद भयो क्यों निधड़क फिरै अयाने ।
तू तो निषट नदान न जानै पड़े नरक विललाने ॥४॥
अजहूँ जनम सफल तुम करिलौ सप्त तत्व पहिचानौ ।
कपूर करौ आत्म हित साधन नाहि पड़ै पल्लितानौ ॥५॥

(३०)

भजन नं० ३०

ऐसो दिन वा छिन कब पाऊँ,
जब हौं वीतराग बन जाऊं टेक॥
सकल परिग्रह तजि धरि दश वृष,
द्वादश भावन भाऊं ।
पञ्चासन दग ज्ञान चरण युत,
आप आप हरषाऊं ॥१॥
तीन काल की परिषह सहूँ,
रिपु कर्म कलंक मिटाऊं ।
बिटप निकट इक चारू शिला पै,
निज अनुभूति रमाऊं ॥२॥
पंच महाव्रत समिति गुप्ति त्रय,
मुक्ति हेतु चित ल्याऊं ।
अमल अखंड अनाकुल अच्युत,
ज्ञप्ति रूप अपनाऊं ॥३॥
द्वपक श्रेणि चढ़ि मोह खौंसि करि
सहजानंद विलसाऊं ।
यही इक आस कपूर लगी नित,
जासे तुम गुण गाऊं ॥४॥

भजन नं० ३१

है वीर नाम सच्चा तू ही जहान में ।
वसु कर्म-शत्रु काट दिए ध्यान कृपाँ में ॥१॥
सुर सुरी सुरेश आए सुविधि भक्ति-युक्त ।
गर्भ, जन्म, तप, बेबल, शिव कल्याण में ॥२॥
कहने को अष्ट गुण धरे विभ्राजते प्रभो ।
परापार गुण विराजमान ज्ञान-भान में ॥३॥
तुम नाम का आधार है चिरकाल से मुझे ।
या दान को बसाओ अब तो मुक्ति-मकां में ॥४॥

-----:०:-----

भजन नं० ३२

अब की तारो मोय प्रभुजी जा विधि जैसे होय ॥टेका॥
सुन नर शक्र करैं नित सेवा तुम्हीं सकल देवन के देवा ।
महिमा जान प्रतीत भई उर तुम सम और न कोय ॥१॥
अर्ज वरु कया तुमसे स्वामी त्रिभुवन व्यापक अंतर्दामी ।
मन अभिलाषा लागि रही है पूरण करदो जोय ॥२॥
कर्मों का दुर्जा सिर पर है चैन न लैन देत पल भर है ।

मूल समेत चुका कर जड़ से देखो कर्मन को खोय ॥३॥
 अधमन मुक्ति दिलाई होगी, वेद पुराण में गाई होगी ।
 सहाय करो ऐसे संकट में जब हों जानूँ तोय ॥४॥
 शीश नमाए कपूर खड़ा है, चर्ण शर्ण में पड़ा हुआ है ।
 पार लगायो या भटकाओ करो जो चाहे सोय ॥५॥

-----:०:-----

भजन नं० ३३

वर्णीजी महाराज पधारे रतन अमोलक पाया है ।
 पुण्य-उदय हम सबका आया सफल मनोरथ भाया है ।
 हुआ चतुर्मासा दिल्ली में आनन्द अनुपम छाया है ।
 दे उपदेश श्री गुरुवर ने निज-पर भेद बताया है ।
 धर्म अहिंसा सत्य अनूपम, है अचौर्यमणि गुणगण भूषण ।
 ब्रह्मचर्य व्रत धारण करिके निज-अनुभव रस पाया है ।
 लोभ कपाय जिन्होंने छोड़ी जगत-जाल से ममता तोड़ी ।
 इन्द्रिय-विषयों को तजि करिके जिन-आत्मध्यान लगाया है ।
 उन वर्णीजी के चरणों में है वन्दन शतवार हमारा ।
 पूर्ण तपस्वी योगीश्वर हैं मिथ्या-भाव हटाया है ।

पूरणसागर पूर्ण विमल है पूर्ण-कला जिनके घट जागी ।
दे उपदेश सकल जीवन को मोक्ष मार्ग बतलाया है ।
निजानन्दजी निजानन्द रत निज-आत्म का ध्यान किया ।
चतुर्वेद का रूप बताकर हित उपदेश सुनाया है ।

चि

ता ।

आ

वीर सेवा मन्दिर

है ।

पुस्तकालय

व्र

३

जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, राजघाट जगन्नाथ मंदिर देहली में छपा ।
